बहुराष्ट्रीय कंपनियां और मौत का व्यापार

Rajiv Dxit

WWW.RAJIVDIXITMP3.COM(09928064941, 09782705883)

प्रस्तावना

आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में आदिकाल से मनुष्य को शारीरिक और मानसिक कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए जितने भी प्रयत्न हुए हैं उनके पीछे मूल प्रेरणा रही है मानव सेवा। रोगियों की सेवा संसार के सभी धर्मों में एक प्रमुख अंग रहा है और इसे आध्यात्मिक उत्थान का व्यावहारिक आधार समझा गया है।

पिछले 200–300 वर्षों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उदय के साथ ही सेवा का यह क्षेत्र बहुत बड़े व्यापार में बदल गया। बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों द्वारा भारी मात्रा में दवा निर्माण के कारण और उनकी खपत करवाने के कारण चिकित्सा और दवा उद्योग की कार्य प्रणाली में भारी परिवर्तन आया। दोनों एक दूसरे के पूरक बन गये। व्यावसायिक रूप से तैयार होते चिकित्सकों ने इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाना शुर कर दिया। वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के एजेण्ट बन गये और दूसरी तरफ बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों ने ढ़ेर सारे प्रलोभन और सुविधाएँ डॉक्टरों को उपलब्ध कराना शुरू कर दिया है।

पिछल 5–7 वर्षों में जबसे विश्व व्यापार संगठन ॅ;ण्ज्व्ण्द्ध की दखलदांजी विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में बढ़ी है। तबसे बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों की भूमिका भी संदिग्ध हो गयी है। ऐसी स्थिति में इस पूरे दवा उद्योग के बारे में आम जनता को बताने के लिऐ बहुत कुछ लिखा गया है। लेकिन वह आसानी से उपलब्ध नहीं होता। ऐसी स्थिति में आजादी बचाओ आंदोलन ने देश की जनता के सामने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा की जा रही लूटखोरी के खिलाफ बिगुल बजाया है। इसी कड़ी में आंदोलन के वरिष्ठ साथी श्री वंशीधर मिश्र ने यह पुस्तक तैयार करने में काफी मेहनत की है।

आंदोलन को उम्मीद है कि इस पुस्तक के माध्यम से जो विचार वह संप्रषित करना चाहता है वह आम जनता तक अवश्य पहुंचेगा।

आज जब विश्व व्यापार संगठन के कानून पुनः लागू होने जा रहे है तब यह आवश्यक हो जाता है कि देश के सभी कोनों से इसके खिलाफ आवाजें उठें और जनता इसके खिलाफ खड़ी हों।

राजीव दीक्षित
आजादी बचाओ आंदोलन

Table of Contents

जीवन रक्षा से मौत के व्यापार तक 4
भारतीय दवा उद्योग पर कब्जा 6
जान लेवा दवाओं का व्यापार 11
अनावश्यक दवाओं व गैर–जरूरी टॉनिकों का उत्पादन 22
आर्थिक दोहन 28
झूठ पर टिका अर्थशास्त्र 35
सरकार और न्यायपालिका भी सवालों के घेरे में 39
बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से मुक्त दवा–उद्योग की जरूरत 44
कीटनाशकों का भी निशाना है हमारा स्वास्थ्य 50

जीवन रक्षा से मौत के व्यापार तक

यूरोप की औद्योगिक क्रांति ने मानव इतिहास में युगान्तकारी परिवर्तन लाये। कृषि और कारीगरी पर टिके समाज की बुनियादें एक–एक करके ढहने लगीं। उत्पादन शैली, खाने–पीने के तौर–तरीके, पहनावा, भाषा, चिकित्सा पद्धतियों में परिवर्तन आये। ये परिवर्तन सतही नहीं, बुनियादी थे। विनिमय प्रधान कृषि–युगीन व्यवस्था, चलन के बाहर होने लगी और उनका स्थान ले लिया बेजान मशीनीय रिश्तों पर टिके व्यापारिक समाज ने।

उद्योग का पेट भरने के लिए जंगल कटे। विशालकाय उद्योगों के रासायनिक कचरों, तेज दौड़ती गाड़ियों एवं रेलगाड़ियों के धुओं ने धरती, पानी और आसमान में जहर घोल दिया। इस विषाक्त वातावरण ने नई–नई बीमारियों को जन्म दिया।

औद्योगिक समाज की पहली जरूरत थी बाजार। इसलिए बाजार की तलाश में इंग्लैण्ड जैसे देशों ने दुनिया के कृषि प्रधान देशों पर कब्जा करना शुरू कर दिया। युद्ध हुए नये समाज की जटिलताओं ने तमाम तरह के तनावों को जन्म दिया। दुनिया के बड़े चिकित्सा वैज्ञानिकों का मानना है कि हाइपरटेन्शन, हृदय रोग, कैंसर, मस्तिष्क सम्बन्धी तमाम बीमारियों का सबसे बड़ा कारण आधुनिक समाज के तनाव हैं। इस समाज की तेज भाग–दौड़ती जिन्दगी में रोगों के इलाज के लिए परम्परागत चिकित्सा पद्धतियां अपर्याप्त साबित होने लगीं और धीरे–धीरे चलन से लगभग बाहर हो गयीं। इन परिस्थितियों में औद्योगिक समाज ने अपनी जरूरतों के मुताबिक 'एलोपैथी' को जन्म दिया। एलोपैथी की पहली दवा एंटीबायटिक के रूप में युद्ध में घायल सिपाहियों के उपचार के लिए खोजी गयी थी।

स्पष्ट रूप से औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप बदली सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों ने नई पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के लिए आधार–भूमि तैयार किया। बाजार पर कब्जा करने के लिए आग्नेयास्त्रों के प्रयोग से युक्त युद्ध की नई तकनीकी ने एक ऐसी चिकित्सा पद्धति को मानव इतिहास में जरूरी बना दिया जो घायल और मरते हुए सिपाहियों का उपचार करके उन्हें पुनः किसी समीपस्थ युद्ध के लिए तैयार कर सके।

लेकिन ज्ञान की धारा तो रूकने वाली नहीं थी। इस नई चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत ऐसी दवाओं की खोज की गयी जिसने प्लेग, हैजा और चेचक जैसे संक्रामक रोगों पर काबू पाकर प्रत्येक वर्ष उनसे मरने वाले लाखों इंसानों को जीवनदान दिया। घोर अनिश्चित और कभी भी आ धमकने वाली मौत के खौफ से समूची मानवता को मुक्त करने वाली नई चिकित्सा पद्धति का दुनिया ने किसी न किसी अंश तक तो स्वागत किया ही।

लेकिन 20 वीं सदी के प्रथम चरण में एक बड़ा परिवर्तन आया। पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति अब केवल चिकित्सा प्रणाली ही नहीं रह गयी, यह पश्चिमी देशों के आर्थिक साम्राज्य को विस्तार देने का बहुत बड़ा माध्यम बना ली गयी। दवा उद्योग लाभ की दृष्टि से हथियारों के कारोबार के बाद पहले नम्बर का व्यापार माना जाने लगा। फलस्वरूप पश्चिम के साम्राज्यवादी देशों ने औषध बाजार पर अपना कब्जा जमाने के लिए जी–तोड़ कोशिश करनी शुरू कर दी। स्वाभाविक रूप से तीसरी दुनिया के तमाम देश उनके लिए सबसे बड़े बाजार साबित हुए। इसलिए वहाँ अपने कारोबार चलाने के लिए पश्चिमी दवा पद्धति को थोपा गया।

इस पद्धति को स्थायी रूप देने के लिए इन देशों की स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों को खत्म करना जरूरी था, जिनके रहते एलोपैथी का विकास संभव नहीं था। साम्राज्यवादी देशों ने एक–एक करके शासित देशों की चिकित्सा पद्धितयों को यह कहकर नकारना शुरू किया कि वे पुरातनपंथी हैं तथा मानव पीड़ाओं का इलाज कर पाने में सक्षम नहीं हैं। कि साम्राज्यवादी शक्तियों की इन साजिशों के चलते कितनी स्वदेशी औषध प्रणालियों ने दम तोड़ दिया और कितनी आज भी तोड़ रहीं हैं, इसका आसानी से अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

पश्चिम में यह नई चिकित्सा पद्धति समाज की जरूरतों एवं वहाँ की परिस्थितियों के मुताबिक भले ही उपयोगी ठहरती हो लेकिन भारत जैसे तीसरी दुनिया के तमाम सारे देशों के सामाजिक परिवेश, जलवायु एवं अन्य परिस्थितियों के न तो ये पूरी तरह अनुकूल होती हैं और न ही करोड़ों गरीब मरीजों का इलाज कर पाने में सक्षम हैं। बल्कि उलटे इसने तमाम स्वास्थ्य सम्बन्धी जटिलताओं को जन्म दिया है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की पुरानी दीवारें तो ढह गयीं लेकिन उसके स्थान पर साम्राज्यवादी ताकतों ने नव–स्वाधीन देशों के शोषण के लिए ऐसा रूप अख्तियार किया जो बहुत ही जटिल और अदृश्य–सा था। यह रूप कमोवेश समूची दुनिया को आज अपने कब्जे में ले चुका है। यह रूप कोई और नहीं बल्कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का है।

भारत जैसे देश में करोड़ों गरीबों को सस्ता उपचार देने के बहाने घुसने वाली, विदेशी दवा कम्पनियाँ मरीजों की जेब काट करके अरबों रुपया प्रतिवर्ष बाहर भेज रही हैं, और दवा के नाम पर देती हैं क्या–जहर, फालतू टॉनिकों की बोतलें और हजारों–हजार गैर–जरूरी दवाएँ। इन कम्पनियों ने भारत समेत तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों को कूड़ादान समझ रखा है जहाँ पर ये अपनी उन हजारों दवाओं का निर्माण और बिक्री करती हैं जिन पर, प्राण–घातक प्रभावों के कारण, उनके स्वयं के देश के साथ–साथ दुनिया के तमाम देशों में प्रतिबंध लगा होता है।

यह कैसी विडम्बना है कि मानवता को शारीरिक पीड़ाओं से निजात दिलाने के लिए खोजी गई नई चिकित्सा पद्धति को बहुराष्ट्रीय निगमों ने मौत के व्यापार में बदल दिया। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी इस बात को स्वीकार करता है कि दवा बनाने वाली दुनिया की बड़ी बहुराष्ट्रीय निगमें अपने मुनाफे के लिए गरीब मुल्कों में हजारों–हजार अनाप–सनाप दवाएँ ठूँस रही हैं जो रोगों से मुक्ति दिलाने के बजाय रोगियों के प्राण ले लेती हैं।

भारतीय दवा उद्योग पर कब्जा

आजादी के बाद 1948 की राष्ट्रीय औद्योगिक नीति ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत की आर्थिक दुनिया में फलने–फूलने का भरपूर अवसर दिया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की मिश्रित अर्थव्यवस्था, पश्चिम के चमचमाते औद्योगिक माडल के प्रति उनकी रीझ एवं गांधी की कुटीर अर्थव्यवस्था के प्रति उनके विकर्षण ने भारत को यूरोप की विकासवादी अवधारणा के रास्ते पर चलने के लिए मजबूर कर दिया। संसद में नेहरू के बयान ने विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को और अधिक प्रोत्साहित किया। नेहरू ने विदेशी पूँजी निवेश और विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को स्वागत करते हुए कहा था कि इससे विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में एवं अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में मदद मिलेगी। ऐसी स्थिति में भारतीय अर्थव्यवस्था में पश्चिमी देशों को घुसने का पर्याप्त मौका मिला। उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में इंग्लैंड और अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने बड़ी तेजी से घुसपैठ करनी शुरू की। अस्त्र निर्माण के बाद इन कम्पनियों के लिए फायदे का दूसरा बड़ा क्षेत्र औषध का था। मौके का फायदा उठाते हुए इन कम्पनियों ने दवा उद्योग पर कब्जा करना शुरू कर दिया। चूंकि दवा उद्योग के क्षेत्र में भारत की कोई अलग औद्योगिक नीति नहीं थी इसलिए 1948 की औद्योगिक नीति ही इस पर लागू हुई। इस नीति के तहत कहा गया था कि पूँजी निर्माण एवं औद्योगिकरण की प्रक्रिया तेज करने के लिए सामान्य औद्योगिक नीति में विदेशी एवं भारतीय उद्योगों के बीच कोई भेद–भाव नहीं बरता जायेगा तथा दोनों को समान रूप से सुविधायें मुहैया करायी जायेंगी। इसके पीछे यह भी अवधारणा काम कर रही थी कि देश का नये औषध विज्ञान (एलोपैथी) से परिचय हो सकेगा, यह उसकी तकनीक सीख सकेगा तथा बहुराष्ट्रीय निगमें भारत की करोड़ों बीमार जनता के लिए पूरी तरह से दवाएँ उपलब्ध करायेंगी।

1948 की राष्ट्रीय औद्योगिक नीति ने हमारे देश में बहुराष्ट्रीय निगमों की बाढ़ ला दी। इन निगमों ने स्वदेशी दवा उद्योग पर घातक प्रहार किया, बाजार पर कब्जा किया और संचार माध्यमों के जरिये पाश्चात्य दवा संस्कृति को हमारे अन्दर स्थापित कर दिया।

आजादी के पहले देश में आयुर्वेदिक औषध पद्धति का ही प्रचलन था। यद्यपि अंग्रेजों ने पश्चिमी दवा पद्धति की नींव डाल दी थी। कुछ लाइलाज या प्राणघातक बीमारियों जैसे टी.बी., हैजा, मियादी बुखार का एलोपैथी में इलाज सम्भव हो सकने के कारण इसे आगे बढ़ने का बल मिला। ऐसा नहीं था कि भारतीय दवा पद्धति में इनका इलाज नहीं था बल्कि अंग्रेजों ने इसके विकास को हतोत्साहित किया। दवा उद्योग के क्षेत्र में अंग्रेजों की घुसपैठ 1924 में शुरू हो गयी थी जब ब्रिटिश कम्पनी ग्लैक्सो ने यहाँ अपना कारोबार शुरू किया था। लेकिन फिर भी यहाँ अंग्रेजी दवा कम्पनियों की जड़ जम नहीं पायी थी। एलोपैथी के क्षेत्र में भारतीय वैज्ञानकि अनभिज्ञ तो थे नहीं। इसके लाभ को मद्दे नजर रखकर इस सदी की शुरूआत में ही आचार्य पी. सी. राय एवं प्रो. टी. के. गज्जर ने फार्मास्यूटिकल उद्योग की स्थापना की थी। यहाँ की प्रमुख बीमारियों को देखते हुए सेरा, वैक्सिन तथा मलेरिया प्रतिरोधी दवाओं की खोज तथा उसका निर्माण किया गया। बंगाल इसका केन्द्र बना। यही नहीं द्वितीय महायुद्ध के पूर्व यूरिया स्टीबमाइन की खोज तथा राल्फिया सर्पेन्टीना पर शोध चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान साबित हुआ। पश्चिमी बंगाल के डॉ. घोष का पेन्सिलीन के निर्माण में

नया योगदान स्वदेशी दवा तकनीक के विकास में काफी महत्व का है। इस तरह स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अन्य क्षेत्रों की भाँति दवा उद्योग के भी क्षेत्र में राष्ट्रीयता का संचार हुआ था और बिना विदेशी मदद के भारतीय औषध (फार्मास्यूटिकल) उद्योग को विकसित करने का संकल्प लिया गया था।

लेकिन इसके साथ ही साथ बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी अपना कारोबार बढ़ाने के लिए कार्यरत थीं। 1948 की भारत सरकार की औद्योगिक नीति ने तो उनके लिए रास्ता खोल दिया। विज्ञापनों एवं अन्य प्रचार के जरिये बाजारों पर कब्जा करने की पारराष्ट्रीय निगमों की आक्रमणकारी नीति ने आयुर्वेदिक दवा पद्धति को तो प्रचलन से बाहर कर ही दिया, भारतीय फार्मास्यूटिकल उद्योग को भी काफी पीछे छोड़ दिया। आत्मनिर्भर राष्ट्रीय दवा उद्योग के विकास के सारे प्रयासों पर पानी फिर गया। 50 के दशक में दवा के क्षेत्र में दुनिया की कुछ बड़ी बहुराष्ट्रीय निगमों ने देश में अपना कब्जा जमा लिया। अमेरिका की फाइजर कंपनी, स्विटजरलैण्ड की रोश, अमेरिका की सीबा गायगी तथा बेयर इण्डिया जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत में अपने को स्थापित कर लिया। इसका एक कारण और था। आधुनिक दवा उद्योग की बुनियाद मूल रासायनिक उद्योग की बुनियाद पर खड़ी है और यह स्पष्ट है कि साम्राज्यवाद ने अपने औपनिवेशिक शोषण के उद्देश्य से इस देश में मूल रासायनिक उद्योग का स्वाभाविक विकास नहीं होने दिया तथा वैज्ञानिक अनुसंधान और कारीगरी की शिक्षा को पंगु बनाकर रख दिया। नये उपकरणों से सज्जित दवा कम्पनियों की तीव्र प्रतियोगिता में घरेलू और देशी दवा उद्योगों का पुनः ह्रास होने लगा।

सन् 1948 में दवा की कुल बिक्री 10 करोड़ की थी जो 1982 में बढ़कर 1200 करोड़ हो गयी और 1992–93 में 7500 करोड़ हो गयी। इसमें 80 प्रतिशत हिस्सा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथ में था। 1975 में केन्द्रीय सरकार द्वारा गठित हाथी कमेटी ने दवा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण की सिफारिश की थी। हाथी कमेटी की रिपोर्ट में कहा गया है कि "सामान्य पूंजी लगा कर ये कम्पनियाँ अपनी औषधियों की बिक्री कर अत्यधिक मुनाफा विदेशों को भेज चुकी हैं। तथा बेहिसाब निजी पूंजी में वृद्धि की है।"

इसी हाथी कमेटी की मुख्य सिफारिशों और नीतियों को भारतीय दवा निर्माता अपने लिये हितकर मानते रहे हैं, जबकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इसे अपने खिलाफ रचा गया एक दस्तावेज मानती हैं। नई औषध नीति, जिसका मसविदा अगस्त – 1993 में सरकार ने संसद में वितरित कराया था, में हाथी कमेटी की जिन सिफारिशों को निरस्त और खारिज करने की सिफारिश की गयी है उनके बाद भारतीय दवा बाजार पूरी तरह बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कब्जे में चला जायेगा। खारिज की जाने वाली कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें निम्न हैं :–

1. राष्ट्रीय दवा प्राधिकरण बनाया जाये जो सारे मंत्रालयों के बीच तालमेल का काम करे (परन्तु इस नये मसविदे में इसका कोई जिक्र नहीं है)
2. सार्वजनिक क्षेत्र की दवाओं के उत्पादन और वितरण को प्राथमिकता दी जानी चाहिये और उनके अधिकार सुरक्षित रखे जाने चाहिये (सार्वजनिक क्षेत्र, नये दस्तावेज के अनुसार किसी विशेषाधिकार का पात्र नहीं है)
3. सारी दवा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को क्रमशः भारतीय स्वामित्व में ले लिया जाये (नई नीति में इसका उलटा है)

4. भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद नई दवाओं का वितरण करे (परिषद को न तो बजट दिया गया है न प्रयोगशालाएं)
5. उत्पादन लाइसेंस देते वक्त अनिवार्य 117 दवाएं बनाते रहने का वायदा लिया जाना चाहिये (कोई वायदा अब नहीं लिया जाना है)
6. गुणवत्ता नियंत्रण के कानून सख्त किये जायें (गुणवत्ता जाँच के लिये दवाइयों का रासायनिक संघठन जानना होता है। नई नीति में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ यह बताने के लिये बाध्य नहीं हैं)
7. दवाइयों के ब्रांड नामों को धीरे–धीरे समाप्त कर दिया जाये (दवाइयों के एकाधिकार को बढ़ाने की नई नीति में सलाह दी गयी है)

इस पूरे चालीस पेज के मसविदे में दवाइयों की गुणवत्ता और उनकी कीमतों के बारे में कुछ भी साफ–साफ नहीं लिखा गया है। इस नई नीति का स्पष्ट मकसद ही दवा उद्योग को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथ में पूरी तरह सौंप देना है। 1978 की दवा नीति में भी सरकार ने स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण नहीं किया जायेगा, तो अब तो उदारीकरण और भूमण्डलीकरण का दौर चल रहा है।

गैट समझौता और नया पेटेन्ट कानून

गैट समझौता होने से और भारतीय पेटेन्ट कानून – 1970 के बदले जाने से भारतीय दवा उद्योग पूरी तरह नष्ट हो जायेगा और भारतीय दवा बाजार पर एकाधिकारवादी बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियाँ छा जायेंगी। गैट समझौते में सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा बौद्धिक सम्पदा कानूनों (ट्रिप्स) को लेकर है जिसके कारण हमारा 1970 का भारतीय पेटेन्ट कानून पूरी तरह बदल जायेगा। 1 जनवरी 95 को सरकार ने एक अध्यादेश के जरिये नया पेटेन्ट कानून लागू भी कर दिया था। हालांकि देशव्यापी विरोध के कारण नया पेटेन्ट कानून संसद से मंजूरी नहीं पा सका।

1956 में अंग्रेजों ने पेटेन्ट व्यवस्था लागू की थी। 1911 में भारतीय पेटेन्ट और डिजाइन एक्ट बनाया गया जिसका उद्देश्य भारतीय बाजार को ब्रिटिश उद्योगों के अधीन बनाना था। ब्रिटिश पेटेन्ट धारकों ने भारत में ऊँची कीमत वाले निर्यात द्वारा हमारे बाजारों का शोषण किया और करोड़ों रूपये कमाये थे। यह लाजिमी था कि यह शोषण दवा क्षेत्र में भी होता। आजादी के पहले और बाद में भी दवाओं का उत्पादन बहुत कम था और देश मुख्यतः आयात पर ही निर्भर था। कोई नई दवा आती थी तो वह पेटेन्ट धारकों की मर्जी के अनुसार ही आती थी। ऐतिहासिक दृष्टि से विदेशी कम्पनियों ने भारत में अपने पेटेन्ट पंजीकृत नहीं करवाये। 1947 से 1957 के बीच भारत में कराए गये 1704 दवा पेटेन्टों में 99 प्रतिशत पेटेन्ट विदेशी नागरिकों के पास थे और एक प्रतिशत से कम को भारत में व्यापारिक उपयोग में लाया गया।

1970 का 'भारतीय पेटेन्ट कानून' हमारे हित के मुख्य क्षेत्रों की रक्षा करने के लिये बनाया गया था। इसमें केवल चार क्षेत्रों – दवा उद्योग, कृषि रसायन, भोजन और विशिष्ट रसायनों के मामले में कानून ने 7 वर्ष के लिये प्रक्रिया पेटेन्ट की अनुमति दी, लेकिन उत्पाद पेटेन्ट की अनुमति नहीं दी है। मुख्य बात यह है कि इस कानून में एकाधिकार को रोकने के लिये 'स्वतः लाइसेंस के अधिकार' का प्रावधान किया गया है। 1970 के पेटेन्ट कानून को

अंकटाड ने प्रगतिशील कानून घोषित कर उसे अन्य देशों के लिये भी एक माडल बताया। इसी कानून का नतीजा था कि 1970 के बाद उद्योग आगे बढ़ा। परन्तु भारतीय दवा उद्योग से योग्यता के आधार पर स्पर्धा करने में असमर्थ होने पर ये 'मुक्त बाजार' के वकील अब निराश होकर अपना एकाधिकार जमाने की फिराक में हैं।

भारतीय पेटेन्ट कानून–1970 के लागू होने के बाद देशी दवा उद्योग में अच्छी प्रगति हुई और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर निर्भरता कम होने लगी। 1974 में दवा उत्पादन 500 करोड़ रूपये से बढकर 1991 में 4000 करोड़ और 1994 में 6000 करोड़ रूपये का हो गया था। इसी प्रकार 1985–86 से 1991–92 के बीज 6 वर्षों की अवधि में हमारा दवा निर्यात 140 करोड़ रूपये से बढकर 1281 करोड़ रूपये का हो गया था। 1991–92 मे 76 करोड़ रूपये की दवाइयाँ अमेरिका को निर्यात की गयीं। भारतीय दवा कम्पनियों को जो भी सफलता मिली उसके पीछे पेटेन्ट कानून – 70 का बहुत हाथ रहा।

गैट समझौते का सहारा लेकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इस पेटेन्ट कानून को बदलवाना चाहती हैं, उनका कहना है कि भारतीय दवा कम्पनियाँ उनके फार्मूलेशन्स चुरा कर दवाइयों का उत्पादन कर रही हैं। हालाँकि यह सही नहीं है। 1970 के पेटेन्ट कानून के मुताबिक केवल 'प्रक्रिया पेटेन्ट' का फायदा देशी कम्पनियों को मिला। परन्तु अब गैट के मुताबिक 'उत्पाद पेटेन्ट' लागू हो जायेगा तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अधिकतर दवाइयों पर अधिकार हो जायेगा। पेटेन्टीकृत दवाइयों का प्रतिशत नीचे सूची में दिया गया है, जिससे हम अन्दाजा लगा सकते हैं कि नया पेटेन्ट कानून लागू हो जाने के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की स्थिति कितनी मजबूत हो जायेगी। भविष्य में बनने वाली सभी दवाइयों पर पेटेन्ट अधिकार लागू होंगे जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कब्जे में रहेंगे। नये पेटेन्ट कानूनों का प्रभाव होगा (1) दवाइयों के दाम 5 से 20 गुना और अधिक हो जायेंगे।

दवाएं	कितने प्रतिशत पेटेंट के दायरे में हैं
कीटाणुनाशक (एण्टीबायोटिक)	40.23
जीवाणुनाशक (एण्टीबैक्टीरियल)	98.80
फफूंदीनाशक (एण्टीफंगल)	25.66
कुष्ठ रोग नाशक (एण्टीलेप्रॉटिक्स)	69.96
हृदय रोग नाशक (कार्डियोवेसकुलर)	40.18
दर्द नाशक (ट्रान्क्यूलाइजर)	74.42
मधुमेह नाशक (एण्टीडायबिटिक)	55.30
अस्थमा नाशक (एण्टी एस्थमैटिक)	47.53
गर्भनिरोधक (कन्ट्रासेप्टिव)	88.79
अल्सर रोधी (एण्टी पेप्टिक अल्सर)	65.92
ल्यूकेमिया रोधी (एण्टील्यूकैमिक)	32.41

(आपरेशन रिसर्च ग्रुप द्वारा किये गये सर्वे पर आधारित)

1994—95 में दवाइयों के दाम 1991—92 की तुलना में 2—3 गुने हो चुके हैं जबकि अभी पेटेन्ट कानून पूरी तरह लागू होना बाकी है। (2) दवाइयों की आपूर्ति प्रभावित होगी क्योंकि अब यह आयात पर ज्यादा निर्भर होगी। (3) दवा उद्योग में नये पूंजी निवेश पर असर पडेगा। (4) सरकार द्वारा संचालित राष्ट्रीय स्वास्थ्य रक्षा कार्यक्रम जो उन नागरिकों के लिये चलाए जाते हैं जो अपने स्वास्थ्य की आवश्यकताओं के लिये खर्च नहीं कर सकते, प्रभावित होंगे। (5) राष्ट्रीय दवा उद्योग का विकास प्रभावित होगा। (6) राष्ट्रीय शोध एवं विकास प्रभावित होगा।

आज दुनिया के दवा उत्पादन के 90% हिस्से पर 30 बड़ी बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियाँ अपना अधिकार रखती हैं और अनुचित पेटेन्ट व्यवस्था और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की रक्षा के नाम पर, 90 विकासशील देशों, जहाँ दवा का स्थानीय उत्पादन नहीं है और वे अधिकतर आयात पर निर्भर करते हैं, की असहाय गरीब और निरीह जनता का शोषण कर रही हैं। इन सभी 90 देशों में विकसित देशों के ही पेटेन्ट कानून लागू हो चुके हैं जिन्हें मानने के कारण वे 2000% अधिक मूल्य देकर अपना शोषण करवा रहे हैं। इण्डियन ड्रग्स मैनुफैक्चर्स एसोसियेशन के अध्यक्ष श्री. आई. ए. मोदी कहते हैं कि “भारत सहित करीब 15 विकासशील देश ऐसे हैं जो अपनी दवा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये फार्मूलेशनो के उत्पादन में लगभग आत्मनिर्भर हैं। इन देशों में भी भारत ही एक मात्र देश है जहाँ दवा उत्पादन अभी भी देशी उत्पादकों के हाथ में है। अन्य 14 देशों में दवाइयों का मुख्य उत्पादन या तो सीधे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा नियन्त्रित होता है या बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से लाइसेंस प्राप्त राष्ट्रीय इकाइयों द्वारा होता है जिनकी दवाइयों के बिक्री मूल्य को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ नियन्त्रित करती हैं। भारत इसका अपवाद है यहाँ 60% से अधिक दवा फार्मूलेशन और 80% से अधिक बल्क दवाएं पूरी तरह से राष्ट्रीय इकाइयों द्वारा उत्पादित हो रही हैं। राष्ट्रीय दवाइयों का निर्यात में हिस्सा 70% है। इन 15 देशों में स्थानीय उत्पादन के कारण और भारत में 1970 के पेटेन्ट कानून के कारण दवा मूल्य संसार में सबसे सस्ते हैं। मूल्यों में 500% से 2000% तक का अन्तर है।

सन्दर्भ

1. ड्रग इंडस्ट्री ऐन्ड द इंडियन पीपुल (सम्पादक डॉ अमित सेन गुप्त, प्रकाशक दिल्ली साइंस फोरम व फेडरेशन आफ मेडिकल रिप्रेजेन्टेटिव्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया) पुस्तक के जे. एस. मजूमदार के लेख से उद्घृत, पृ. 8।

2. भारतीय दवा उद्योग पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की काली छाया—डॉ समर राय चौधरी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पृ. 12।

जान लेवा दवाओं का व्यापार

हमारे देश में इस समय लगभग 515 दवाएँ ऐसी हैं जो बाजार में लगभग 8000 विभिन्न नामों से बिक रही हैं। इन दवाओं पर दुनिया के तमाम देशों में पाबन्दी लगायी जा चुकी है तथा इनके निर्माण और बिक्री को घातक अपराध घोषित किया जा चुका है। डाक्टरों और वैज्ञानिकों का कहना है कि ये दवाएँ प्राणघातक हैं और आदमी के रक्त को प्रदूषित कर कैंसर, लकवा, अंधापन, विकलांगता जैसी भयंकर बीमारियों को जन्म देती हैं तथा शरीर की रोग से लड़ने की क्षमता खत्म कर देती हैं। ये दवाइयाँ आने वाली पीढ़ियों में शारीरिक तथा मानसिक–विकृतियाँ भी पैदा करती हैं। यह गम्भीर चिन्ता का विषय है कि दुनिया के अन्य तमाम देशों में "जहर" घोषित की जाने वाली कुछ दवाएँ हिन्दुस्तान में खुली बिक्री की इजाजत पा चुकी हैं। यहाँ कुछ ऐसी दवाओं के नाम दिये जा रहे हैं जो दूसरे तमाम देशों में प्रतिबंधित हैं लेकिन हमारे यहाँ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बनायी और बेची जाती हैं। इन दवाओं को मुख्य रूप से मे एण्ड बेकर, सीबा गायगी, बारोजवेलकम, पार्क डेविस, ज्योफ्रीमैनर्स, फाइजर, हेक्स्ट, सैण्डोज, रोस, स्केफ, एस. जी. फार्मास्युटिकल, ग्लैक्सो, बूट्स कम्पनी, ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा इंफार इण्डिया कम्पनियाँ बनाती हैं। इन दवाओं को बेंचकर ये कम्पनियाँ देश का अरबों रूपया प्रतिवर्ष बाहर भेज रही हैं।

दवाओं का नाम	देश द्वारा प्रतिबन्धित	कुप्रभाव
1. आक्सीफिन बूटाजोन	ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी, जापान, इटली, स्वीडन, फिनलैंड, अमेरिका, बांग्लादेश, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, मलेशिया, इजराइल, जार्डन आदि।	इस दवा की केवल कुछ खुराक लेने पर ही अँतड़ियों में घाव हो जाता है। इससे रक्त कैंसर होने का भी खतरा रहता है। इस दवा से अब तक 15,000 लोगों की मौत हो चुकी है। प्रतिबन्धित देशों मे इसे "बी" श्रेणी का जहर घोषित किया गया है। पैरों को लकवा मार जाता है तथा व्यक्ति के अन्धे होने का खतरा बना रहता है। इसके सेवन से जापान में 10,00 लोग लंगड़े और अन्धे हो गए।
2. फिनाइल बूटाजोन		
3. एक्ब्रीमाल		
4. एल्जीरियल		
5. अरीस्टोपाइरीन		
6. बूटाकार्टिडान		
7. बूटाप्राक्सिवान		
8. ऑक्सीपोज		
9. लार्जेसिक		
10. न्यूरोजेसिन		
11. सुगरिल		
12. ऑक्सीजोन		
13. पैराबूटाजोन		
14. क्लिओक्विनाल	जापान, नार्वे, स्वीडन जर्मनी, डेनमार्क, नेपाल, फिलीपीन, स्पेन, फ्रांस, श्रीलंका,बांग्लादेश, समेत दुनिया के तमाम देश।	
15. एम्बिक्विनाल		
16. एलीक्विन		
17. एम्बीजाइम फोर्ट		
18. एमीक्योर		

19. एमीक्लीन 20 एमीजील प्लस 21. क्लोरोपेक्टडीन 22. डायडोक्वीन 23. इण्टरोजाइम 24. आयडोजोल 25. आयडोसाइक्लीन 26. मेटाक्वीन 27. न्यूट्रोजाइम 28. आयडोहाइड्राक्सिक्वीन 29. क्विनोजोल		
30. एनल्जीन 31. बेराल्गन 32. बुस्कापान 33. बूटाल्जिन 34. फारजेसिक 35. मार्लाजिन 36. आक्सीपोज 37. सिनाल्जेसिक 38. जिमाल्जिन 39. अल्ट्राजिन 40. फीनोल्जिन 441. पामाजिन	आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, बेल्जियम, चिली, डेनमार्क, फ्रांस, ग्रीस, मिस्त्र, इजराइल, इटली, जापान, कोरिया, मैक्सिको, नेपाल, स्वीडन, अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी आदि।	अस्थि–मज्जा में श्वेत रक्त कणिकाओं के बनने में भारी बाधा पहुंचती है जिसके कारण हड्डियों एवं मांसपेशियों की संरचना में भयंकर विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जो अन्ततोगत्वा इन्हें क्षीण कर इनके सेवन करने वाले को निहायत कमजोर कर मृत्यु तक पहुँचा देती है।
42. एपी फोर्ट 43. मेस्ट्रोजनफोर्ट 44. ओरोसेक्रान फोर्ट 45. ओरगालुटीन 46. ओस्टोरोन 47. एस. जी. फोर्ट 48. क्लोरोस्ट्रेप	आस्ट्रिया, बेल्जियम, डेनमार्क, ग्रीस, इटली, न्यूजीलैंड, सिंगापुर दक्षिण अफ्रीका, थाईलैण्ड, ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी, बांग्लादेश आदि।	गर्भणी महिलाओं को दी जाने वाली ये दवाएँ गर्भस्थ शिशुओं को विकलांग कर देती हैं। यदि बिना गर्भवती महिला को दे दिया जाये तो मासिक धर्म अनियमित हो जाता है।
49. कूपर स्ट्रेप 50. क्लोरोम्फेनिकाल एण्डस्ट्रेप्टोमाइसिन	बांग्लादेश, साइप्रस, डेनमार्क, इटली, जापान, श्वेत रक्त कणिकाओं के बनने नेपाल,	अस्थि–मज्जा को क्षतिग्रस्त कर में बाधा उत्पन्न करती हैं तथा

51. इंटेस्टोस्ट्रेप 52. इंटरोस्ट्रेप 53. स्ट्रेप्टोफेनिकाल	नार्वे, फिलीपींस स्वीडन, बेनेजुएला, पाकिस्तान, मलेशिया।	शरीर की प्रतिरोधक क्षमता समाप्त कर मृत्यु की ओर ढकेलती हैं।
54. ओराबोलीन 55. ड्यूराबोलीन 56. डेकाड्यूराबोलीन 57. इवाबोलीन	बांग्लादेश, ब्रिटेन समेत देशों में प्रतिबंधित।	भारत में बच्चों को दिए जाने तमाम वाली ये ड्राप बच्चों में विकास सम्बन्धी विकार पैदा करते हैं। इनके और भी कई भयंकर कुप्रभाव होते हैं।
58. नोवाल्जिन 59. ब्रूफेन 60. एस्पिरिन	ब्रिटेन, अमेरिका समेत कई देशों में प्रतिबंधित।	आंतो में घाव कर अल्सर बनाती है।
61. काइमर 62. काइमोरल 63. काइमोरल फोर्ट 64. अल्फाप्सिन	सभी विकसित देशों में प्रतिबंधित।	ये दवाइयाँ बिल्कुल अप्रभावी हैं तथा इनकी क्षमता संदिग्ध है। वैज्ञानिकों का मत है कि इनमें रोग को ठीक करने की ताकत ही नहीं होती।
65. स्पैसिमिजाल 66. पाखाफोर्ट 67. जागरिल 68. बेटाफ्लाम 69. एस. जी. पाइरिन	अर्जेन्टाइना, ब्रिटेन आयरलैण्ड, इजराइल, फिलीपींस आदि।	प्राणघातक रक्त दोष होता है। किडनी व कलेजे को क्षति पहुँचाती हैं जिससे आदमी की मृत्यु भी हो जाती है।
70. इंटरोक्विनाल 71. डिस्फर प्लस	डेनमार्क, डामिनियन गणराज्य, इटली, नार्वे, जापान, नेपाल, फिलीपींस सऊदी अरब, स्वीडन, बेनेजुएला, साइप्रस आदि।	इनके सेवन से लंगड़ा, अंधा होने का गंभीर खतरा होता है।
72. इन्ट्रोबायोफोर्म 73. मेक्साफार्म		अँतड़ियों से सम्बन्धित रोगों में सीधा प्रभाव के बजाय उल्टा प्रभाव डालती हैं।
74. पाइरोलान 75. सिनाल्जेसिक 76. ब्रोमोसेडान	नेपाल सहित विश्व के तमाम देश।	ये दवाएँ पसीना निकलना रोक कर ताप घटाती हैं। उल्टियाँ तथा उत्तेजना पैदा कर मानसिक सन्तुलन खराब करती हैं
78. एसीटोफेनेटाइडिन 79. फेनासिटीन		यकृत और गुर्दे को क्षति पहुँचाती हैं।

	कनाडा, चिली, साइप्रस, डेनमार्क, इटली, मारीशस, अमेरिका आदि।	
80. एक्रोमाईसिन 81. टेरामाइसिन एस. एफ.	इटली, नेपाल, स्वीडन, अमेरिका, बेनेजुएला।	इन दवाओं में मौजूद विटामिन सी सिर्फ दमा बढ़ाने के सिवाय कोई काम नहीं करता।
82. डोकाबोलीन 83. हिस्टाप्रेड 84. पेरीकार्ट 85. पेरीड्रान	विश्व के तमाम देशों में प्रतिबंधित।	ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है तथा गुर्दे के खराब हो जाने की सम्भावना बढ़ जाती है।
86. इरगोफेन 87. माइग्रिल 88. माइग्रेनिल 89. स्टीप्टोमेट	विश्व कें तमाम देशों में प्रतिबंधित।	ब्लड प्रशेर बढ जाता है तथा गुर्दे के खराब हो जाने की सम्भावना बढ जाती है।
90. टेट्रासाइक्लिनर्थोरान सस्पेंशन	बांग्लादेश, डेनमार्क, इटली, जार्डन, न्यूजीलैण्ड, पेरू आदि।	बच्चों के दाँत भूरे रंग के हो जाते हैं। सस्पेंशन
991. ट्राइनार्जिक	विश्व के तमाम देशों में प्रतिबंधित।	शरीर पर भयंकर कुप्रभाव प्रभाव डालती है।
92. रेस्टिल 93. कामस्लिप 94. प्लासीडाक्स 2 95. प्लासीडाक्स 10 96. प्लासीडाक्स 5	ग्रीस, इटली, नार्वे, स्वीडन, बेनेजुएला, बांग्लादेश, नेपाल आदि।	घातक जहर की तरह प्रभाव डालती है। तंत्रिका तंत्र पर बुरा प्रभाव डालती है।

स्रोतः बैंड ऐन्ड बैनेबुल ड्रग्स (हेल्थ ऐक्शन सीरीज 2) संशोधित संस्करण, ड्रग एण्ड द इंडियन पीपुल तथा स्थानीय दवा बाजारों के सर्वेक्षण पर आधारित।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने ऐसे कई सम्मिश्रण बनाये हैं जो कि निरर्थक होने के साथ–साथ हानिप्रद भी होते हैं। मिसाल के तौर पर क्लोरोफेनिकाल तथा स्ट्रेप्टोमाइसिन का सम्मिश्रण जो पेचिस में दिया जाता है। विशेषज्ञ डाक्टरों का कहना है कि यह सम्मिश्रण बहुत ही अतर्कसंगत और नुकसानदेह है, फायदा बिल्कुल नहीं औषध सलाहकारी समिति की 1980 की सिफारिश में क्लोरोफेनिकाल के सभी एफ. डी. सम्मिश्रणों पर रोक लगा दी गयी थी। लेकिन दुःख कि बात है कि इस रोग में उक्त सम्मिश्रण शामिल नहीं था। फलतः आज भी यह खुले बाजारों में उपलब्ध है। इसी तरह पेंसिलीन और स्ट्रेप्टोमाइसिन, पेंसिलीन और सल्फानामाइड्रस, विटामिन्स और एनाल्जिक्स, टेट्रासाइक्लीन एवं विटामिन सी, आदि के सम्मिश्रण

भी बेहद नुकसानदेह हैं। लेकिन सारे सम्मिश्रण बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा तैयार किये और आपूर्ति किये जाते हैं।

खतरनाक गर्भ निरोधक बहुराष्ट्रीय साम्राज्यवाद के गुप्त हथियार

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा थोपे गये संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों की अनिवार्य शर्त है जनसंख्या नियंत्रण। हालांकि इस शर्त का लोगों की जिंदगी बेहतर बनाने से कोई मतलब नहीं पर यह शर्त्र सुनिश्चित करती है कि हर हथकण्डा अपना कर हर हालत में विकासशील देशों की जनसंख्या को नियंत्रित किया जाय और साथ में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बनाये जा रहे खतरनाक गर्भ निरोधकों को बेचकर भारी मुनाफा भी कमाया जाय। पिछले तीन दशकों से सरकार का परिवार नियोजन कार्यक्रम अमेरिकी आर्थिक सहायता से जुड़ी शर्तों के अनुसार चल रहा था। जिसके लिये सरकार ने गर्भ निरोधकों के स्थान पर नसबन्दी पर जोर दिया, परन्तु जोर जबरदस्ती नसबन्दी करने के राजनैतिक दुष्परिणाम सामने आये तो यह नीति त्याग दी गयी और गर्भ निरोधक दवाइयों को प्रोत्साहन दिया गया।

भारतवासियों को गेहूँ–चावल के बीच चुनाव कर भरपेट खाना दिलाने में असमर्थ रही सरकार इस बात के लिये तैयार थी कि इन भूखी औरतों को दुनिया की नई गर्भ निरोधक दवा मिले। 60 के दशक में इजाद ज्यादातर गर्भ निरोधक, हार्मोन पर आधारित लम्बी अवधि तक असर रखने वाले रसायन ही थे। इनमें कृत्रिम हार्मोन इस्ट्रोजन और प्रोजेस्ट्रान के अलग–अलग मिश्रणों से बने गर्भ निरोधक शामिल थे, जिन्हें खाने की गोलियों से लेकर सुइयों, चमड़ी के अन्दर रोपे जाने वाले कैप्सूल, योनि में रखे जाने वाले छल्लों, नाक में छिड़की जाने वाली दवाइयों के रूप में इस्तेमाल किया गया। इस्ट्रोजन व प्रोजेस्ट्रान के संयोग से बनी ये दवाइयाँ गम्भीर बीमारियों का कारण बनीं, जिनमें दिल व रक्तचाप की बीमारी, थक्के जमने की बीमारी, कैंसर, पाचन सम्बन्धी गड़बड़ियाँ, भ्रूण पर विपरीत असर वाली बीमारियाँ शामिल थी। इसी दौरान दो नई प्रकार की सुइयों का भी आविष्कार हुआ। जर्मनी की 'शेरिंग ए जी' नामक कम्पनी द्वारा बनायी 'नेट–इन' व अमेरिका की अपजाँन कम्पनी द्वारा बनाई 'डिपो प्रोवेरा'। नेट इन और डिपो प्रोवेरा सुइयों के गम्भीर प्रभाव औरतों के शरीर पर पड़ते हैं, सुई लगवाने के बाद औरतों का शरीर फूल जाता है, चक्कर आते हैं, सरदर्द की शिकायत, थकान, भूख न लगना, अथवा अत्यधिक भूख लगना, वैवाहिक सम्बधों और किसी को हर समय खून रिसता रहता है। अगर वे बच्चे को स्तनपान करा रही हैं तो दूध की मात्रा व गुणवत्ता पर असर पड़ता है। पेट व स्तनों को छूने से दर्द, घबराहट व उदासी की बीमारी, एलर्जी, हृदय रोग खून के थक्के जमने की बीमारी भी हो सकती है। कुल मिलाकर डेपो प्रोवेरा के निर्माता ने 78 दुष्प्रभावों को स्वीकार किया है। एक बार लगवाने के बाद दुबारा औरतें इनके पास फटकती भी नहीं। परन्तु इनकी निर्माता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों। (शोरिंग ए जी व अपजॉन) पर कोई असर नहीं हुआ क्योंकि इन्होंने विकासशील देशों में अपने बाजार ढूंढ लिये, जहाँ की सरकारें पहले से ही जनसंख्या नियंत्रण के लिये हाथ पैर मार रहीं थीं। डिपो प्रोवेरा के परीक्षणों से ही ज्ञात हो चुका था कि इसके प्रयोग से कैंसर होता है परन्तु इसकी निर्माता कम्पनी की इतनी ऊपर तक पहुँच थी कि ये गर्भ निरोधक बिक्री के लिये बाजारों में आ गये। अमेरिका में डाक्टर काली चमड़ी की

किशोरियों को उस समय से डिपो प्रोवेरा लगाते चले आ रहे हैं जब वहाँ की सरकार ने इसे स्वीकृति तक नहीं दी थी। इसी तरह न्यूजीलैंड के आदिवासियों व इंगलैंड के अश्वेतों को यह सुई लगाई जा रही है, और अब तीसरी दुनिया के अन्य मुल्कों में इसका प्रचार–प्रसार किया जा रहा है। डिपो प्रोवेरा की भुक्त भोगी वे सभी मनुष्य प्रजातियाँ हैं जिनकी संख्या को सीमित रखना श्वेत नस्ल की अगुवाई बनाए रखने के लिये आवश्यक है।

एड्स और कण्डोम का व्यापार

एड्स का हल्ला मचा कर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों (साथ ही साथ देशी कम्पनियों ने भी) ने कण्डोम का बाजार खड़ा किया है और कई सौ करोड़ रूपये का सालाना मुनाफा कमा रही हैं। हालांकि एड्स खतरनाक बीमारी है और यौन संसर्ग के अलावा कई अन्य तरीकों से भी इसका प्रसार होता है। जैसे इन्जेक्शन की सुई द्वारा, रक्त लेने से एवं पसीने के सम्पर्क द्वारा। परन्तु बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की शह पर एड्स को रोकने के जिन तरीकों को ज्यादा प्रचारित किया जा रहा है उनमें हैं सुरक्षित सम्भोग और कण्डोम का प्रयोग। डाक्टर लार्ड ओ कलिंग्स के अनुसार एक बार के यौन सम्पर्क से 0.1–1 प्रतिशत सुई से 0.5–1 प्रतिशत, रक्त चढ़ाए जाने से 0.9 प्रतिशत एड्स होने की सम्भावना रहती है। इस तरह संक्रमित व्यक्ति के साथ सम्भोग या सुई के इस्तेमाल और रक्त चढ़ाने से एड्स होने की बराबर सम्भावनाएं रहती हैं। देश में यौन सम्बन्धों के लायक सिर्फ 30% लोग ही हैं जो अधिकतर अपने जीवन साथी के अलावा किसी अन्य से यौन सम्पर्क नहीं बनाते। दूसरी तरफ बच्चे से लेकर बूढ़े तक इन्जेक्शन की सुई का प्रयोग करते हैं अतः इस रास्ते एड्स फैलने की सम्भावनाएं बहुत अधिक हैं। इसके अलावा रक्तदान द्वारा इस बीमारी का होना लगभग तय है। और अभी भी हमारे देश में 50 प्रतिशत मामलों में रक्त बिना जांच के ही चढ़ा दिये जाते हैं। भारत में विशेष स्थितियों में उपर्युक्त दोनों तरीकों से एड्स प्रसार की ज्यादा सम्भावनाओं को नजर अंदाज कर यौन सम्पर्कों को ही मुख्य जिम्मेदार मानना पश्चिम का प्रभाव और कण्डोम निर्माता कम्पनियों की पहुंच का ही परिणाम है। विलासी उपभोक्तावादी संस्कृति के इस दौर में कण्डोम संस्कृति और उस का प्रचार विवाहेत्तर यौन सम्बन्धों को बढ़ाकर इस बीमारी की जड़ को हरा ही बनायेंगे।

हमारे देश में लगभग 40 करोड़ रूपये का कण्डोम देशी कम्पनियाँ और इतना ही कण्डोम विदेशी कम्पनियाँ बेच रही हैं। विदेशी कण्डोमों के बारे में यह बात खास तौर से उल्लेखनीय है कि 1982 से ही सरकार ने इनके आयात पर से सीमा शुल्क समाप्त कर दिया था और उस फैसले के बाद ही देश का बाजार विदेशी कण्डोमों से भर गया। करीब 25–30 एजेन्सियाँ जापान, कोरिया, ताइवान, हांगकांग, थाइलैण्ड वगैरा से कण्डोम थोक के भाव मंगाती और बेचती हैं। करीब 20 देशी व 80 विदेशी ब्रांडो अर्थात 100 से ज्यादा ब्रांडो में 100 करोड़ से ज्यादा कण्डोम सालाना बिक रहे हैं।

गर्भ निरोधक दवाए

ब्रांड नाम	रासायनिक नाम	निर्माता कम्पनी	क्या है	कैसे काम करता है	समस्यायें	भारत में प्रयोग का स्तर

नेट इन	स्टीरॉयड नारेथिस्टेशन एनन्थेट (संश्लेषित प्रोजेस्ट्रेरान)	शेरिंग ए. जी. (जर्मनी)	दो महीने में दिया जाने वाला है। इन्जैक्शन	पियूष ग्रन्थि के हार्मोन को रोकता यह अण्डा पकने और अण्डोत्सर्ग को रोकता है।	बिना जानकारी के यह इंजेक्शन दिया जा सकता है। इसका दुष्प्रभाव नही खत्म हो सकता है	चौथा चरण समाप्त हो चुका है शहरों में इस्तेमाल के लिये तैयार
डेपो प्रोवेरा	डिपा मैडरौक्सी प्रोजेस्टेरॉन एसिटेट	अपजॉन कम्पनी (यू.एस.ए)	हर दो महीनों में मांस पेशियों में दिया जाने वाला इन्जेक्शन	अण्डोत्सर्ग रोकता है। ग्रीव श्लेष्मा को शुक्राणु ग्रहण करने से रोकता है, गर्भाशय की ठहरने के दीवारों को गर्भ अनुपयुक्त बनाता है।	माहवारी चक्र में दोष पैदा करता है। कैंसर, रक्तचाप जैसी बीमारियाँ पैदा करता है।	प्रतिबन्धित मार्केट निरीक्षण के बाद बाजार में लाने की अनुमति मिल गयी है।
माला डी	कम मात्रा की एस्ट्रोन व प्रोजेस्ट्रान की गोलिया	अनुपलब्ध	खाने की गोलिय	अण्डोत्सर्ग को रोकता है। गर्भाशय की दीवारें गर्भ ठहरनेहैं। के अनुपयुक्त बनाती है।	सभी दुष्प्रभाव जो दूसरे कृत्रिम हार्मोन से होते नियमित सेवन न करने से असर नहीं रहता।	बिना डाक्टर की पर्ची के बाजार से खरीदी जा सकती है।

आर. यू. 496 रूसैल यूक्लैफ	प्रोस्टाग्लान्डिन हार्मोन	होएस्ट ए. जी. (जर्मनी)	खाने की गोलियाँ	अनुपलब्ध	49 दिनों के बाद लेने से गर्भपात नहीं होता व बच्चा विकलांग पैदा हो सकता है।	बजार में उपलब्ध
नर प्लांट	लिवा नारजेस्ट्राल, कृत्रिम प्रोजेस्ट्रान हार्मोन	लियराज फार्मास्युटिकल, फिन लैण्ड द्वारा निर्मित	इन्जेक्शन	अनुपलब्ध	माँस पेशिया ढीली पड़ जाती है। महावारी गड़बड़ा जाती है। बेहोशी आने लगती है।	अनुपलब्ध
सहेली	सेंटो कोमन (गैर हार्मोनिक रसायन)	सी. डी.आर. आई. लखनऊ की खोज और हिन्दुस्तान लैटेक्स का उत्पादन	खाने की गोलियाँ	अनुपलब्ध	सिर चकराना पाचन की समस्याएं	बाजार में डाक्टर की सलाह पर उपलब्ध
प्रजनन रोधक टीका	एंटी हयूमन कारियाँनिक टीका	नेशनल इंस्टीट्यूट आफ इम्यूनोलाजी	टीका	गर्भाधान के खिलाफ प्रतिरोधक क्षमता	अनुपलब्ध	प्रयोग का पहला चरण

		नई दिल्ली		विकसित करता है		

"मुक्त यौन" की संस्कृति और उसे कण्डोम द्वारा सुरक्षा कवच पहना कर प्रचारित करने से युवाओं की उर्जा का प्रवाह किस दिशा में मोड़ दिया गया है यह अलग से एक बहुत ही गम्भीर सवाल है।

स्मिथलाइन बीचम कम्पनी का खतरनाक टीका

बच्चों की गले की बीमारी मम्पस की रोकथाम के लिये 'यूरेब स्ट्रेन' के टीके के भयानक दुष्प्रभावों को देखते हुए जापान, कनाडा और इंग्लैण्ड ने इसके इस्तेमाल पर रोक लगा दी है। कनाडा और इंग्लैण्ड के डाक्टरों के मुताबिक यूरेब टीका लगाने के बाद बच्चों में दिमागी बुखार और दिमाग की ऊपरी परत तथा मेरू रज्जू पर सूजन का असर पाया गया। परन्तु भारत सरकार इन सबसे बेखबर है या बहुराष्ट्रीय कम्पनी का प्रभाव है कि आज भी यह टीका गांवों में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जा रहा है। यद्यपि स्मिथलाइन बीचम कम्पनी ने इस टीके का उत्पादन बन्द करना तय कर लिया है परन्तु भारत और पाकिस्तान में इस टीके का भारी स्टाक जमा है और सरकार उसका उपयोग जारी रखे हुए है।

खतरनाक टूथपेस्ट

ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा तैयार किये गये एक अध्ययन में इस बात पर गम्भीर असंतोष व्यक्त किया गया कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के गैंग ने किस प्रकार "दवा और कास्मेटिक एक्ट–1992" की धज्जियाँ उड़ा दी। इस कानून में फ्लोराइड मिले हुए टूथपेस्टों की बिक्री पर कुछ पाबन्दियाँ लगा दी गयी थीं। राष्ट्रीय पेयजल आयोग द्वारा तैयार किये गये इस दस्तावेज में ग्रामीण क्षेत्रों में फ्लोरोसिस नामक बीमारी (जिसमें हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं, दांत गिर जाते हैं) के खिलाफ लड़ रहे स्वास्थ्य कर्मियों एवं अन्य विशेषज्ञों को सचेत किया गया है। 90 पेज के इस दस्तावेज में कहा गया है कि फ्लोरोसिस नामक बीमारी उन क्षेत्रों में अधिक होती है जहाँ पेयजल में फ्लोराइड की मात्रा अधिक होती है।

1945 के दवा और कास्मेटिक कानून में संशोधन करते हुए बनाए गये 'दवा और कास्मेटिक एक्ट– 1992' के लागू होने से पहले ही सरकार एक गजट नोटीफिकेशन द्वारा टूथपेस्ट निर्माताओं के लिये तीन शर्तों की सूची बना चुकी थी। पहली, कोई भी टूथपेस्ट में फ्लोराइड की मात्रा 1000 पी. पी. एम. (पार्ट पर मिलियन) से अधिक नहीं होनी चाहिये दूसरे, प्रत्येक टूथपेस्ट डिब्बे पर बनाने और अनुपयोगी होने की तारीखें सुस्पष्ट लिखी जानी चाहिए। तीसरे, प्रत्येक टूथपेस्ट ट्यूब पर यह चेतावनी लिखी होनी चाहिए कि 7 वर्ष से कम के बच्चे फ्लोराइड युक्त टूथपेस्ट का इस्तेमाल नहीं करेंगे। परन्तु यह नोटीफिकेशन जब जारी हुआ तो इसमें बच्चों की चेतावनी वाली शर्त ही गायब हो गयी। दस्तावेज की सम्पादक आल इण्डिया इंस्टीट्यूट आफ मेडिकल साइंसेज की डा. ए. के. सुशीला ने बताया कि ऐसा टूथपेस्ट निर्माता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दबाव में किया गया। क्योंकि ये कम्पनियाँ चाहती थी कि भारतीय

सरकार कोई कड़ा रूख न अपनाये, अन्यथा सारे विकासशील देशों की सरकारें इस तरह का कानून बना देंगी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अरबों रूपये का कारोबार समाप्त हो जायेगा। डा. सुशीला ने एक खामी की ओर और इशारा किया। उन्होंने कहा कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ यह तो लिख देती हैं कि निर्माण के समय टूथपेस्ट में 1000 पी. पी. एम. से कम फ्लोराइड मिलाया गया है, परन्तु जिन कच्चे माल का इस्तेमाल टूथपेस्ट बनाने में होता है उसमें स्वयं कभी–कभी इस सीमा से ज्यादा फ्लोराइड होता है। विशेषज्ञों ने फिर मांग की है कि दवा और कास्मेटिक एक्ट – 92 में भी इस दिशा में संशोधन होने चाहिये।

क्या टूथपेस्ट में फ्लोराइड मिलाया जाना चाहिए, इस पर पिछले वर्षों से लगातार बहस चलती रही है। क्योंकि फ्लोरोसिस नामक बीमारी का कोई इलाज नहीं है और इसे केवल फ्लोराइड की मात्रा से नियंत्रित किया जा सकता है। लेकिन पेस्ट निर्माता कम्पनियों पर क्या असर पड़ता है। उन्हें तो अधिक से अधिक मुनाफे से मतलब।

बूचड खाने से खून और हड्डियाँ दवा कम्पनियाँ ले जाती हैं

दिल्ली के ईदगाह बूचड़खाने से रोजाना निकलने वाला 13 हजार लीटर खून बड़ी–बड़ी दवा कम्पनियाँ टॉनिक बनाने के लिये ले जाती हैं। खासतौर पर गर्भवती महिलाओं के लिये पशुओं के खून से बनने वाला 'डेक्सोरेंज' टॉनिक बहुत लोकप्रिय है। खून ही नहीं, काटे गये पशुओं के तकरीबन हर अंग का इस्तेमाल टूथपेस्ट, सरेस, फेवीकोल, चीनी के बरतन, सनमाइका, इंसूलिन इन्जेंक्शन आदि बनाने में होता है। बूचड़ खाने में सब जानवरों का मिला जुला खून इकट्ठा किया जाता हैं। इसके बावजूद दवा बनाने वाली कम्पनियों को खून की कमी पड़ती रहती है।

खून के साथ–साथ बाकी अंगो का इस्तेमाल भी दवाई और कई दूसरी चीजें बनाने में किया जाता है। इनकी हड्डियों को जलाकर उसका पाउडर टूथपेस्ट, चीनी के बर्तन और सनमाइका बनानें में इस्तेमाल किया जाता है। लब्बा (कलेजी के पित्ते के पास का टुकडा) का इस्तेमाल बरनौल ट्यूब बनाने और इंसुलिन इन्जेक्शन में होता है। होजड़ी (जानवरों के पेट की थैली जिसमें खाना जमा होता है) से पेपटून बनाया जाता है। जानवरों का लीवर भी टॉनिक और इन्जेक्शन बनाने में इस्तेमाल किया जाता है।

मच्छर मार दवाएं घातक हैं

एक तरफा जहाँ अनुसंधानकर्ता मच्छरों से मुक्ति के लिये परेशान हैं वहीं दूसरी तरफ बहुराष्ट्रीय उद्योग मच्छर भगाने वाली दवाएं और अन्य उपकरण काफी बड़े पैमाने पर बनाने में लगे हुए हैं। मच्छरमार दवाओं और उपकरणों को बड़े पैमाने पर उत्पादित, विज्ञापित और बिक्री किया जा रहा है। करोड़ों अरबों डॉलर का इनका कारोबार हो गया है उपकरणों और दवाओं से मच्छर तो भागते हैं परन्तु मानव स्वास्थ पर इनका गम्भीर असर पडता है।

पिछले दिनों विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बताया कि मच्छरों से बचने के लिये निकली अधिकतर दवाओं में मेल्फोक्वीन नामक रसायन होता है जो दिमाग और शरीर के लिये घातक हो सकता है। हमारे देश में मच्छरमार दवाओं में कुछ ऐसे कीटनाशकों का प्रयोग हो रहा है

जो अन्य देशों में प्रतिबन्धित हैं। इसी कारण निर्माता कम्पनियाँ कीटनाशक उत्पादों की संरचना की जानकारी का खुलासा भी नहीं करतीं।

बाजार में बिक रहे इन मच्छरमार ब्रांड़ो में विषैले रसायन 'डी–एथीलीन' का इस्तेमाल किया जा रहा है जिसके लगातार उपयोग से स्वास्थ्य के लिये खतरा पैदा हो सकता है। स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार बिजली से चलने वाले उपकरणों में जो धुँआ निकलता है उसमें फोसफीन नामक गैस से सिरदर्द, एलर्जी, नाक में खुश्की, होठों का सूखना, गले में खराश वगैरा हो जाती है। इसके लगातार प्रयोग से दम घुटने और साँस रूकने की स्थिति बन जाती है जो दिल और दमा के मरीजों के लिये घातक हो सकती है।

अधिकांश स्वास्थ्य विशेषज्ञ सबसे ज्यादा चिंतित तो उन बच्चों के लिये हैं जिन्हें जन्म से मच्छर मार दवाओं को झेलना पड़ता है। ज्यादातर माँ–बाप अपने बच्चों के निकट कछुआ छाप, कैस्पर या गुड नाइट जला देते हैं ताकि उन्हें मच्छर न लगे। बच्चे ज्यादा तीव्र गति से सांस लेते हैं इसलिये यह धुंआ ज्यादा तेजी से बच्चों के फेफडों में जाता है। और बच्चे बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। यह धुंआ गर्भवती महिलाओं पर भी प्रभाव डालता है, जिसके प्रभाव से मंदबुद्धि या विकलांग बच्चे पैदा हो सकते हैं। स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने मच्छरमार क्रीम को भी हानिकारक बताया है। इन क्रीमों में ऐसे पदार्थ मिलाये जाते हैं जिनकी खुशबू से मच्छर दूर भागते हैं। इस क्रीम से त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ सकती हैं। त्वचा पर हल्के–हल्के दाने व खारिश हो सकती है।

इन दवाइयों के स्थान पर सुरक्षित विधियों का लोगों को ज्ञान कराया जाना बहुत जरूरी है। मच्छरदानी सबसे सस्ता व सुरक्षित तरीका है। मच्छरों का प्रजनन रूके हुए पानी में होता है। इसीलिये रहने के स्थानों पर पानी का जमाव नहीं होना चाहिये।

अनावश्यक दवाओं व गैर–जरूरी टॉनिकों का उत्पादन

भारत पारराष्ट्रीय निगमों द्वारा प्रतिबंधित अनावश्यक और नुकसानदेह दवाओं को खपाने का बहुत बड़ा बाजार रहा है। देश की जलवायु और यहाँ फैलने वाले विभिन्न रोगों के मुताबिक इन्होंने कभी भी दवाओं का निर्माण नहीं किया। भारत में मुख्य रूप से टी.बी., कुष्ठ रोग, आंत्रज्वर, पेचिस, फाइलेरिया के मरीज आधिक हैं। इस समय बाजार में 50 से 60 हजार प्रकार के फार्मूलेशन उपलब्ध हैं। लेकिन विडम्बना है कि टी.बी, मलेरिया, पेचिस तथा फाइलेरिया जैसे रोगों की दवाओं की बाजार में कमी है। हाथी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि 117 या 150 दवाएँ ही अत्यावश्यक हैं जो 89–90 प्रतिशत लोगों की रोग के व्याधि में काम आती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत में प्रचलित रोगों के इलाज के लिए मात्र 250 दवाओं की जरूरत हैं मूल उत्पादान जो व्यापक पैमाने पर दवाओं की जरूरतों को पूरा करता है, वह बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बहुत ही कम तैयार किया जाता रहा है, यहाँ तक की लघु क्षेत्र से भी कम। सन् 1973 में इस देश में 5,300 टन मूल रसायन (बल्क) का उत्पादन हुआ, इनमें से मात्र 10 प्रतिशत का उत्पादन साधन सम्पन्न टेक्नॉलाजी के माध्यम से इन विदेशी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने किया था। बाकी 90 प्रतिशत का उत्पादन भारतीय जनता और निजी संस्थाओं ने किया था। राष्ट्रीय क्षेत्र में 33 प्रतिशत उत्पादन हुआ। नीचे के आँकड़े इसे और भी स्पष्ट करते हैं।

मूल रसायन का उत्पादन (विभिन्न क्षेत्रों के द्वारा)

क्षेत्र	(रुपये–करोड़ में)		
सार्वजनिक क्षेत्र	1976–77	1983–84	1992–93
भारतीय निजी क्षेत्र	43	61	102
लघु क्षेत्र	25	155	840
बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ	10	74	330
(फेरा एक्स एवं फेरा दोनों)	63	65	84

स्रोत : हाथी कमेटी टू 1978 ड्रग पॉलिसी। ए जर्नी इन रिवर्स डाइरेक्शन। जे. एस. मजूमदार (नेशनल कम्पेन कमिटी फार ड्रग पॉलिसी, राजेन्द्र नगर, द्वारा प्रकाशित तथा ड्रग एक्शन नेटवर्क के स्रोतों से)।

इस बात में किसी संदेह की गुंजाइश नहीं कि विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने दवा उद्योग पर अपना एकाधिकार स्थापित करने एवं बेतहाशा मुनाफा कमाने की नीयत से समूचे

नैतिक मानदंडो, राष्ट्रीय कानूनों और वायदों को तोड़ा है। भारत समेत गरीब मुल्कों को इन कम्पनियों ने अपनी जागीर बना रखा है। हमारे देश में जिन रोगों की बहुलता है और उनके इलाज के लिये दवाएँ आवश्यक हैं उनका उत्पादन ये कम्पनियाँ अपने फायदे की गणित सही करने के लिये न के बराबर करती हैं। इसके बदले ये ऐसी दवाओं और टॉनिकों का उत्पादन करती हैं जो गैर–जरूरी होती हैं। लेकिन जिसमें मुनाफे का प्रतिशत अपेक्षाकृत बहुज ज्यादा होता है। नीचे दिये गये आँकड़ों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

दवा का नाम	कम्पनी का नाम	टनुमोदित उत्पादन शक्ति	1973 के वर्ष में उत्पादन
क्लोरमफेनिकाल (मियादी बुखार की दवा)	1. पार्क डेविस	20 टन	11.79 टन
	2. बोयरिंगर नल	30 टन	19.58 टन
	3. मैक लेबोरेटरीज	25 टन	0.47 टन
सल्फाडिमिडिन पैस (टी. बी. की दवा)	1. मे. एण्ड बेकर	210 टन	0.04 टन
		120 टन	56.06 टन
		300 टन	135.82 टन
आइ. एन. एच. (टी. बी. की दवा)	1. बायो इवांस	10 टन	0.13 टन
	2. वार्नर हिन्दुस्तान	1.6 टन	0.06 टन
		90.0 टन	6.24 टन

स्रोत : मिथ एण्ड रियलिटी ऑफ ड्रग इंडस्ट्री (भारतीय दवा उद्योग पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की काली छाया– डॉ. समर राय चौधरी के पृष्ठ संख्या 24 से उद्धृत)

हाथी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है– "भारत सरकार का निर्देश था कि जिन कम्पनियों का वार्षिक उत्पादन का विक्रय मूल्य 2 करोड़ रूपये से अधिक है, वे अगर मौलिक रसायन का उत्पादन नहीं करें तो उन्हें नयी उपयोगी दवाओं को तैयार करने की इजाजत नहीं दी जायेगी, लेकिन अनेक विदेशी एवं बहुराष्ट्रीय प्रतिष्ठान ऊँचे मूल्य में मूल रसायन का आयात कर फार्मूलेशन तैयार कर रहें हैं और इस तरह वे सरकारी निर्देशों का उल्लंघन कर रहे हैं। परिणामस्वरूप भारतीय यूनिटें मारी जा रही हैं। 66 बहुराष्ट्रीय यूनिटों में मे मात्र 19 प्रतिष्ठानों ने सन् 1973 में मूल रसायन का उत्पादन किया है।

भारत जैसे गरीब मुल्क में जहाँ आज भी 60 फीसदी से अधिक लोग गरीबी की रेखा के नीचे जी रहे हों बीमारियों का एक मुख्य कारण कुपोषण हुआ करता है। इसलिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने इसका खूब फायदा उठाया। विटामिन और प्रोटीनयुक्त कैप्सूलों, टैब्लेटों तथा टॉनिक सीरप तैयार करके बाजार में झोंक दिया। लेकिन असलियत यह थी कि इन्होंने जितना विटामिन और प्रोटीन नहीं दिया उससे अधिक खून गरीबों की हड्डियों से निचोड़ लिया। नीचे के आँकड़े बताते हैं –

नाम	प्रोटीन की मात्रा	मूल्य (लोकल टैक्स अलावा)
प्रोटीन्यूल्स (अलेम्बिक)	90 ग्राम (225 ग्राम टीन में)	27.83 रूपये
प्रोमोलॉन (सारा भाई)	90 ग्राम (225 ग्राम टीन में)	18.54 रूपये
ट्रोफॉक्स (रैप्टाकास)	100 ग्राम (250 ग्राम टीन में)	41.44 रूपये
हीप्रो लिक्विड (अमेरिकन रेमेडीज)	13 ग्राम (200 मिली. में)	19.90
एल्प्रोविट (एल्कम)	13 ग्राम (200 मिली. में)	17.60 रूपये

स्रोत : "ड्रग इंडस्ट्री एण्ड द इंडियन पीपुल" पुस्तक में डॉक्टर वी. ब्रह्म रेड्डी के लेख "इनएसेन्सल एण्ड यूजलेस ड्रग्स इन द मार्केट" से साभार।

एक वयस्क व्यक्ति (60 किलोग्राम वजन) को 60 ग्राम प्रतिदिन के हिसाब से प्रोटीन की जरूरत पड़ती है। एक बच्चे (10 किलो) को 30–40 ग्रंम प्रोटीन प्रतिदिन चाहिए। इस तरह यदि एक बच्चे को उचित मात्रा में प्रोटीन दिया जाय तो प्रोटीन्यूल (225 ग्राम टीन वाली) का डिब्बा केवल तीन दिन चलेगा और इस प्रकार प्रतिदिन का खर्च 10 रूपया होगा। अगर प्रोटीन का लिक्विड दिया जाये तो दो बोतल से अधिक रोज देना होगा जिसकी कीमत 35–50 रूपये होगी। जबकि इसका एक विकल्प तैयार किया गया है जिसे हैदराबाद फार्मूला कहा जाता है (जे. ई. पार्ट के एस. पी. एम. के टेक्स्ट बुक से लिया गया है)।

तत्व	मात्रा	कीमत
गेहूँ	400 ग्राम	2.00 रूपये
बंगाली चना	160 ग्राम	1.00 रूपये
मूँगफली	100 ग्राम	0.80 रूपये
ताड़ गुड़ या शक्कर	200 ग्राम	1.00 रूपये
कुल योग	860 ग्राम	4.80 रूपये

स्रोतः "ड्रग इण्डस्ट्री एण्ड द इण्डियन पीपुल" के पृष्ठ संख्या 118 से

इसमें कुल प्रोटीन की मात्रा 113 ग्राम होगी। यदि यह एक बच्चे को दिया जाये तो प्रतिदिन का खर्च 1 रूपये, 25 पैसे पड़ेगा जब कि प्रोटीन लिक्विड का खर्च प्रतिदिन 35 रूपये पड़ेगा। हैदराबाद पाउडर में भरपूर विटामिन, प्रोटीन एवं अन्य पोषक तत्व होंगे, हाँ, यह चमचमाते खोल में नहीं लपेटा होगा और न ही इसके पीछे विज्ञापन एवं प्रचार की आक्रामक एवं हिंसक तकनीक ही काम कर रही होगी। लेकिन चमचमाती पैकिंग से तो विटामिन और अन्य पोषक तत्व मिलते नहीं।

इसी तरह ग्लैक्सो कम्पनी 200 ग्राम के ग्लूकोज के डिब्बे पर लगभग 10–12 रूपये वसूलती है, इस तरह 1 किलो के डिब्बे का दाम 50 रूपये हुआ। इसका सेवन कमजोरी, पेचिस, डिहाइड्रेशन, इन्फेक्टिव हेपाटाइटिस में किया जाता है। इन रोगों में मरीज को

कार्बोहाइड्रेट की जरूरत पड़ती है। 250 ग्राम चीनी में 1000 ग्राम कैलोरी के बराबर कार्बोहाइड्रेट प्राप्त होता है जिसकी कीमत (आज बढ़े हुए दाम पर भी) चार रूपये हुई। जबकि इतनी कैलोरी के लिए लगभग 14 रूपये का ग्लूकोज लेना पड़ता है। ग्लैक्सो का दावा है कि यह ग्लूकोज मात्र 15 मिनट में शरीर के भीतर ऊर्जा में तब्दील हो जाता है, लेकिन इतने ही समय में चीनी भी ऊर्जा का रूप ले लेती है। इस तरह यदि हमारा काम चीनी से चल सकता है तो हमें कई गुना अधिक दाम देकर ग्लैक्सो कम्पनी के फायदे में इजाफा क्यों करना चाहिए।

इसी प्रकार विटामिन बी.1, बी.6, बी.12 जो न्यरोबियान, (ई. मर्ट), मेक्राबेरिन (ग्लैक्सो) जैसे तमाम प्रचलित नामों से बनती और बिकती हैं, गैरजरूरी हैं। मिसाल के तौर पर 100 मिलीग्राम के इंजेक्शन में शरीर विटामिन बी.1 की केवल 1 या 2 मिलीग्राम, इतने ही के बी.6 के इंजेक्शन में शरीर 1 ग्राम तथा 1,000 मिलीसेंटीग्राम के बी.12 के इंजेक्शन में शरीर केवल 2 या तीन मिली सेंटीग्राम ही स्वीकार करती है, बाकी पेशाब के साथ बाहर निकल जाता है। डॉक्टरों का कहना है कि विटामिन बी.12 की कमी तो प्रायः देखने को मिलती ही नहीं। लेकिन बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इनका अन्धाधुन्ध निर्माण करती हैं।

स्मृति बढ़ाने या वापस लाने, मानसिक सन्तुलन को ठीक करने तथा इस तरह की अन्य बीमारियों के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने इन्सेफाबॉल (ई.मर्क), हाइडरगिव (सन्डोज) जैसे बहुत मँहगे टैब्लेटों का निर्माण किया है जिनकी रोज की खुराक पर 15–20 रूपये खर्च होते हैं। लेकिन अधिकांश डॉक्टर यह बखूबी जानते हैं कि खोई हुई याददाश्त को वापस लौटाने के लिए ये सारी दवाइयाँ किसी फायदे की नहीं हैं, लेकिन यह इन कम्पनियों की करामात है कि इनकी अच्छी–खासी बिक्री होती है। रक्तस्त्राव को रोकने के लिए बनी स्टिप्टोबियान (ई. मर्क) एवं स्टेप्टोक्रॉम (डाल्फिन) दवाओं का भी रक्तस्त्राव को रोकने में कोई उपयोग नहीं है। इसी तरह दर्दनाशक दवाओं जैसे एस्पिरिन, एस्प्रो, कोडापायरिन, माइक्रोपाइरिन इसी के साथ) आदि का भी प्रयोग उचित नहीं होता। मूलतः ये नशे की गोलियाँ होती हैं और इनका उपयोग नुकसानदायक होता है। इसी कारण से ये कई देशों में प्रतिबंधित हैं। इसी तरह के तमाम सीरप, टॉनिक, बी. काम्पलेक्स सीरप, पाचक टॉनिक आदि गैर जरूरी दवाएँ हैं जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा भारी पैमाने पर तैयार की और बेची जाती हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार सरकारी अस्पतालों को छोड़कर 1973 में जितनी दवाएँ बाजार में बिकीं, उनमें टॉनिकों और पौष्टिक दवाओं का स्थान छठा था। मुनाफे के फंदे में फंस कर हम यह भी भूल गए कि आधे पेट अथवा भूखे आदमी को टॉनिक के सहारे जिन्दा नहीं रखा जा सकता, भले ही वह टॉनिक बहुत ही स्वादिष्ट, कीमती, सुगंधित और देखने में सुन्दर क्यों न हो। बिकासुल, बिकोजाइम फोर्ट, लेडारप्लेक्स इत्यादी विटामिन सोने के भाव बिक रहे हैं जिन्हे हम बर्तन–भांडे बेचकर भी खरीदने के लिए मजूबर होते हैं।

लोगों का यह मानना है कि टॉनिक का सेवन करने से आदमी स्वस्थ हो जाता है। यह तथ्य पूर्णतया भ्रामक है। वस्तुतः एक स्वस्थ शरीर के लिए टॉनिक की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन आजकल टॉनिक का सेवन एक फैशन की तरह हो गया है। टॉनिक के नाम पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हमें ब्लैकमेल कर रही हैं। एक बहुत उत्तम किस्म के टॉनिक के दाम के दसवें हिस्से से भी कम मूल्य के संतुलित आहार से कहीं ज्यादा पोषक तत्व प्राप्त हो जाते हैं। आमतौर पर टॉनिक में पाये जाने वाले तत्व बहुत कम मात्रा में शरीर के लिए आवश्यक

होते हैं और उनका असर दो या तीन घंटे तक ही रहता है। अतः अधिक मात्रा में टॉनिक लेने से वह सारे आवश्यक तत्व शरीर द्वारा ग्रहण होने के बजाय मल एवं मूत्र के साथ निकल जाते हैं। आमतौर से सभी टॉनिकों में कुछ विटामिन, खनिज, इन्जाइम और अल्कोहल होता है। ये सभी चीजें प्रकृति के स्रोतों जैसे दूध, चना, अण्डा, फलों तथा हरी सब्जियों में बहुतायत से मिलते हैं। प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त आवश्यक तत्व मानव शरीर में अवशोषित हो जाते हैं तथा दाम की दृष्टि से भी सस्ते पडते हैं। लेकिन प्रचार तथा भ्रामकपूर्ण बयानबाजी से बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ 500 करोड़ रूपये सालाना केवल टॉनिक से कमाती हैं। इस तरह ये कम्पनियाँ टॉनिक के नाम पर हमें बहका कर हमारा शोषण कर रही हैं। गैर–जरूरी तथा आकर्षक नामों से टॉनिक बनाकर इन्होंने हमारे ऊर्जा तथा आवश्यक पोषक तत्वों के परम्परागत स्रोतों को गौण बना दिया और पूरे भारत में टॉनिक संस्कृति फैलायी है। प्रचार की चकाचौंध में अंधा हुआ भारतीय मान बैठा है कि जो बच्चा ग्राइपवाटर, बूस्ट, हेप हार्लिक्स और काम्प्लान नहीं पियेगा वह मोटा–ताजा नहीं हो सकता। आगे दी गयी सूची में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बनाये गये टॉनिकों की लम्बी फेहरिस्त तथा उनके परम्परागत प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक विकल्प सुझाये गये हैं।

ऊर्जा तथा शक्ति देने वाले टॉनिक		
टॉनिक का नाम	कम्पनी का नाम	विकल्प
1. बूस्ट	बूस्ट	इनके घरेलू स्रोत दूध, चना, जौ, अण्डा, फल एवं सब्जियाँ हैं। संतुलित आहार लेने के पश्चात् इनकी कोई आवश्यकता होने पर च्यवनप्राश का सेवन किया जा सकता है।
2.. हार्लिक्स	बीचम ग्रुप	
3. काम्पलॉन	बीचम ग्रुप	
4. स्पर्ट	वाइन्डर	
5. प्रोटीनेक्स	फाइजर	
6. बोर्नविटा	कैडबरीज	
विटामिन युक्त टॉनिक		
7. सेन्टीविनी	सन्डोज	ये टॉनिक भूख बढ़ाने, भोजन पचाने तथा विटामिनों की कमी से होने वाले रोगों में प्रयुक्त होते हैं। भूख बढ़ाने वाले ये टॉनिक असहज ढंग से शरीर की तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव डालकर शरीर में विकृतियाँ पैदा कर देते हैं। सभी प्रकार के विटामिनों का अच्छा स्रोत्र दूध, हरी सब्जियाँ, दही, टमाटर, नींबू, हरा मिर्चा, घी ऑवला, पपीता, गाजर तथा विभिन्न फल हैं। विशेष
8. बीकाडेक्सामीन	ग्लैक्सो	
9. बी. जी. फास	मेरिन्ड	
10. पालिवियान	मर्क	
11. प्रैक्टिन	मेरिन्ड	
12. प्रोन्यूट्रीन	सी.एफ.एल.फार्मा	
13. नर्वीटोन	एलेम्बिक	
14. मीटाटोन	पार्क डेविस	
15. न्यूरोफास्फेट्स	एस्केफ	
16. आमिल्काल	गिल्टन	
17. सिल्टान	ड्यूफर	
18. काइनेटोन	बूट्स	
19. साइपान सीरप	जीनी	

20. न्यूट्रीफिल	बार्नर	परिस्थितियों में द्राक्षासव, अंगूरासव, अश्वगंधारिष्ठ, सिंकारा, जेरी फोर्ट सीरप आदि आयुर्वेदिक टॉनिक लिये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त होम्योपैथिक, यूनानी में भी बेहतर विकल्प मिल जायेंगे।
21. एम्बेलिक्स	मे एण्ड बेकर	
22. मार्विटा	फार्म्ड	
23. ओरहेप्टाल	मर्क	
24. सिक्साप	फ्रेंको इण्डियन	
25. बीटाहेक्स्ट	हेक्स्ट	
26. बीटाप्लेक्स इलिक्सिर	ईस्ट इण्डिया	
27. जेनिट	स्केफ	
28. बीकासूल		
लौह युक्त टॉनिक		
29. एनिमीडाक्स	**मर्क**	**ये टॉनिक रक्ताल्पता (एनीमिया) में प्रयुक्त होते हैं। उचित मात्रा में दूध, सेब, हरी सब्जियाँ, गन्ने का रस, गुड़, आँवला तथा पालक का साग सेवन करने से एनीमिया की कोई सम्भावना नहीं रहती तथा इन टॉनिकों के हानिकारक प्रभाव से बचा जा सकता है। विशेष परिस्थितियों में लौहासव का सेवन किया जा सकता है।**
30. डेमसोरेन्ज	**फ्रेंको इण्डियन**	
31. आऊट्रीन	**सायनामिड**	
32. वीनोजेन	**रैलीस**	
33. केप्सोविटफोर्ट	**फार्म्ड**	
34. ड्यूमास्यूल्स	**फाइजर**	
35. फर्सी	**एल्केम**	
36. फेरोचिलेट	**अल्वर्ट डेविड**	
37. फर्विट	**वाल्टर बुशनैल**	
38. फीजोफोरेजड	**इस्केफार्मा**	
39. फीजोविटस्पैन्स्यूल	**इस्केफार्मा**	
40. फीलोनेट बी	**एलेम्बिक**	
41. हीमेट्रिन	**सन्डोज**	
42. हेम्फर	**एल्केम**	
43. हीपास्यूल्स	**बायलाजिकल 'इ'**	
44. आइवाल	**एबाट**	
45. इमफराल	**रैलीस**	
46. जैक्टोफर	**सी. एफ. एल. फार्मा**	
47. लिवोजेन	**एलेन बरीस**	
48. टोनोफोरान	**ईस्ट इण्डिया**	
49. हेप	**ल्युपिन**	

आर्थिक दोहन

आजादी के बाद खासकर दवाओं के क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को न्योतने के पीछे जो उद्देश्य था वह एक साल के अन्दर चकनाचूर हो गया। देश के करोड़ों मरीजों के लिये पर्याप्त दवाओं की पूर्ति तो हो ही नहीं सकी, उलटे एक वर्ष की अवधि (1951–52) के दौरान भारत को 15.6 करोड़ रूपये के मूल्य के बराबर दवायें आयात करनी पड़ीं। इस गरीब देश की जनता की जेब से करोड़ों–अरबों रूपया रॉयल्टी के नाम पर इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के जरिये विदेश चला जाता है। साथ ही साथ इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की मुनाफे की राशि साल–दर–साल बढ़ती गई। नीचे सारणी से स्पष्ट है –

कम्पनी	स्थापित	प्राथमिक मूलधन	मुनाफा (1972–73)
फाइजर	1950	2 लाख रूपये	585 (लाख रूपये)
बेयर इण्डिया	1958	4 "	232 (लाख रूपये)
ग्लैक्सो	1924	–	287 (लाख रूपये)
साइनामिड	1947	1.50	394 (लाख रूपये)
रस प्रोडक्टस	1958	10.00"	175 (लाख रूपये)
रिचर्ड हिन्दुस्तान	1964	0.02"	50 (लाख रूपये)
		(2 हजार रूपये)	
सेंडोज	1947	10 (लाख रूपये)	117 (लाख रूपये)
अलकली केमिकल	1937	–	248 (लाख रूपये)
सीबा	1947	3"	196 (लाख रूपये)
			2,294 (लाख रूपये)

स्रोत: मिथ एण्ड रियलिटी ऑफ ड्रग इंडस्ट्री

सारणी से स्पष्ट है कि फाइजर (अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी) ने सन् 1950 में मात्र दो लाख रूपये की पूँजी से भारत में दवा का कारोबार शुरू किया था और 22 वें वर्ष (1972–73)

में 585 लाख रूपये का शुद्ध मुनाफा कमाया। 23 वर्षों में मूलधन की तुलना में 293 गुना का मुनाफा यानी 29 हजार फीसदी से अधिक का मुनाफा। इसी तरह से अन्य कम्पनियों का है। कुल 9 कम्पनियों का प्राथमिक मूलधन 30 लाख 51 हजार रूपये रहा और इनका मुनाफा 2,294 लाख रूपये (23 करोड़)। यदि इन कम्पनियों के सालाना लागत और मुनाफे का औसत देखा जाय तो वह भी काफी चौंकाने वाला है। नीचे की सारणी इस बात को पुष्ट करती है –

विदेशी कम्पनियों का लागत मूलधन और मुनाफा (1971–72)

कम्पनी का नाम	लागत मूलधन	टैक्स देने के बाद का शुद्ध लाभ
ग्लैक्सो	30.00 (लाख रूपये)	175.00 (लाख रूपये)
बेयर इण्डिया	6.00 (लाख रूपये)	154.64 (लाख रूपये)
सीबा गायगी	70.00 (लाख रूपये)	114.46 (लाख रूपये)
साइनामिड	40.00 (लाख रूपये)	115.32 (लाख रूपये)
मे ऐण्ड बेकर	180.00 (लाख रूपये)	201.77 (लाख रूपये)

स्रोतः डिक्लरेशन एण्ड डाक्यूमेंट्स – नेशनल कान्वेंशन आन इकानामिक इंडिपेंडेंट्स एण्ड पर्सपेक्टिव ऑफ ड्रग इंडस्ट्री, अर्पेडिकस – XXII

ग्लैक्सो कम्पनी 36 लाख रूपये की पूँजी लगाती है और पौने 2 करोड़ रूपये का मुनाफा कमाती है यानी 5 गुना ओर प्रतिशत की भाषा में 500 प्रतिशत। बेयर इण्डिया का फायदा इसके लागत मूल्य से लगभग 26 गुना अधिक यानी 2,600 प्रतिशत।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मुनाफे दवा उद्योग में लगातार बढ़े हैं। स्वास्थ्य के व्यावसायीकरण की उनकी नीतियों ने भारतीय दवा कम्पनियों का भट्ठा बैठा दिया है। दवा के लाइसेंस पर प्रसाधन सामग्रियाँ तथा 90 फीसदी से अधिक गैर–जरूरी दवाएँ बनाने वाली कम्पनियाँ सबसे भ्रष्ट और क्रूर तरीके अपनाकर भारतीय बाजारों पर अपना कब्जा जमायीं हैं। दूसरी तरफ सस्ती और अधिक उपयोगी विकल्प देने वाली भारतीय दवा कम्पनियाँ (सार्वजनिक एवं निजी दोनों) लगातार घाटे का शिकार होती जा रही हैं। इन कम्पनियों का लाभ किस तरह साल–दर–साल बढ़ा है। यह नीचे के आँकड़ों से स्पष्ट है :

कम्पनी का नाम	शुद्ध मुनाफा वर्ष 1971–72	शुद्ध मुनाफा वर्ष 1988–89
वारोज वेल्कम	20.35 लाख रूपये	540.00 लाख रूपये
ग्लैक्सो	175.00 लाख रूपये	760.00 लाख रूपये
मे ऐण्ड बेकर	201.77 लाख रूपये	394.00 लाख रूपये
पार्क डेविस	42.06 लाख रूपये	306.00 लाख रूपये
सैन्डोज	32.93 लाख रूपये	206.00 लाख रूपये
पाँच कम्पनियाँ	472.04 लाख रूपये	2206.00 लाख रूपये

स्पष्ट है कि इन कम्पनियों का मुनाफा 17 साल में लगभग पाँच गुना बढ़ा है। यानी 500 प्रतिशत।

दवाओं पर होने वाले अरबों–खरबों रूपये के मुनाफे से जब ये दवा कम्पनियाँ संतुष्ट नहीं हुई तो खेती–बाड़ी में इस्तेमाल होने वाली कीटमारक दवाओं एवं अन्य रसायनों के उत्पादन क्षेत्र में पाँव पसारना शुरू कर दिया। आज स्थिति यह है कि अधिकांश दवा कम्पनियाँ कीटमारक दवाएँ एवं अन्य कृषि रसायन भी बना रही हैं। इनके लाभ के प्रतिशत में वृद्धि की काफी गुंजाइश रहती है। मिसाल के तौर पर सीबा गायगी कम्पनी। इस कम्पनी ने वर्ष 1988–89 में 255.49 करोड़ रूपये के बराबर कीटनाशी दवाओं का कारोबार किया, जिसमें इसे 14.91 करोड़ रूपये का शुद्ध मुनाफा हुआ। हमारे देश में लगभग 60 हजार दवाएँ तैयार की जाती हैं जिसमें 90 फीसदी से अधिक गैर–जरूरी हैं इन गैर–जरूरी दवाओं पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ देश का 2,500 करोड़ रूपया प्रतिवर्ष बाहर ले जाती हैं। 500 करोड़ रूपये की नुकसानदेह दवाएँ भारतीय बाजारों में बिक रहीं है जबकि 1985–86 में भारत में कुल दवाओं की खपत मात्र 2,000 करोड़ की रही।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने आर्थिक रूप से तीसरी दुनिया के देशों को किस तरह से लूटा है इसकी कई जगह मिसाल है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में टियोटक्सीन की प्रति किलो कीमत जब 500 डालर थी तो अमेरिका की फाइजर कम्पनी ने इसे चिली में 3,026 डालर के हिसाब से बेचा था। लैटिन अमेरिका में औषध निर्माण के क्षेत्र में 15 पारराष्ट्रीय निगमें कार्यरत हैं। उनके मुनाफे की दर 972.1 प्रतिशत पहुँच गयी है। एक रूसी लेखक के अनुसार भारत जैसे कुछ देशों में ये कम्पनियाँ दवाओं पर 8.000 प्रतिशत का मुनाफा लेती हैं। अर्जेन्टीना में आयातित दवाओं के मूल्यों में न्यूनतम 3,700 प्रतिशत अधिक वृद्धि हुई। एंटीबायटिक्स पर 650 प्रतिशत, विटामिन टैब्लेटों पर 730 प्रतिशत का फायदा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने वसूला।

भारत में स्विट्जरलैण्ड की दवा कम्पनी रोश, लिब्रियम और बेलियम की आयातित सामग्री पर क्रमशः 13,246 रूपये तथा 27,860 रूपये प्रति किलो वसूल कर रहीं थी। जब भारत सरकार ने इसका खुद आयात करना शुरू किया तो इस कम्पनी ने इन दो चीजों की कीमत क्रमशः 380 रूपये और 462 रूपये प्रति किलो कर दिया। इस प्रकार से कम्पनी ने भारत को दो प्रकार से लूटा – पहला उपभोक्ताओं को ज्यादा दाम देने पर मजबूर किया तथा दूसरा भारत से कर चोरी की। एक रूसी लेखक का कहना है कि बहुराष्ट्रीय निगमों ने मानव जाति का जबरदस्त नुकसान किया है तथा समाज से हजारों–करोड़ों रूपये वसूलते रहे हैं।

अमेरिका की केफएबार समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा था "सम्पूर्ण विश्व में एक मात्र भारत ही ऐसा देश है जहाँ जनता की औसत आयु की तुलना में दवाओं का मूल्य सबसे अधिक है" समिति ने इस बात को भी देखा कि 50 के दशक में भारत में काम कर रही अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने यहाँ बिकने वाली एंटीबायटिक्स दवाओं के दामों में भारी वृद्धि कर दी। सरकार ने जब भी दवा के मुल्य को स्थिर करने का प्रयास किया इन कम्पनियों ने इसके खिलाफ हल्ला मचाना शुरू कर दिया। 9 अप्रैल 1963 को भारत–चीन संघर्ष के समय सरकार ने भारत रक्षा कानून का प्रयोग करके दवाओं का मूल्य स्थिर कर दिया था। पारराष्ट्रीय निगमों ने इसका बहुत विरोध किया। सरकान ने 1966 में कुछ विशेष दवाओं के मूल्य बढ़ाये। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की ओर से मात्र 6 प्रतिशत दाम बढ़ाने का आवेदन किया गया लेकिन इन्होंने 10 से 40 प्रतिशत दामों की वृद्धि की।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को नई दवाओं की बिक्री पर एकाधिकार की छूट –

1 जनवरी 95 को सरकार ने बहुराष्ट्रीय निगमों को देश में नई दवाओं और कृषि रसायनों की बिक्री पर एकाधिकार की छूट दे दी। 1970 के पेटेन्ट कानून को बदलते हुए नये पेटेन्ट कानून का अध्यादेश पारित करते समय सरकार ने बाकायदा उत्पाद पेटेन्ट की बातें स्वीकार की। हालांकि इस कानून को बाद में संसद ने अस्वीकार कर दिया और अब यह अध्यादेश निरस्त हो गया है, परन्तु अध्यादेश लाने से पहले गैट की समझौता वार्ताओं में ही सरकार ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बिक्री एकाधिकार की बात स्वीकार कर ली थी। गैट समझौता पर हस्ताक्षर होने (14 अप्रैल, 1994) के एक वर्ष बाद कोई भी दवा कम्पनी अपनी दवा के पेटेन्टीकरण के लिये भारतीय पेटेन्ट कार्यालय में अर्जी दे सकती है। हालांकि पेटेन्ट अधिकार, भारतीय पेटेन्ट कानून – 1970 बदलने के बाद ही मिलेगा। परन्तु यह अधिकार अर्जी देने की तिथि से ही लागू माना जायगा। इसी समझौते के तहत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को उस उत्पाद की बिक्री का एकमेव अधिकार प्राप्त हो जायगा, जो इस प्रकार की 5 वर्षीय पेटेन्ट सुरक्षा के दायरे में आ जायगा। यह अधिकार दवा नियंत्रण प्राधिकरण द्वारा प्रदान किया जायेगा। ऐसी स्थितियों में जबकि उत्पाद पेटेन्ट के लिये अर्जी दाखिल की जा चुकी हो और एकमेव विपणन अधिकार (5 वर्ष के लिये) उपलब्ध करा दिये गये हों, 1970 के पेटेन्ट कानून के तहत दिया गया प्रक्रिया पेटेन्ट अर्थहीन हो जायगा।

इसका एक भयंकर परिणाम तो यही होगा कि देशी दवा उत्पादक 10 वर्ष के संक्रमण काल (गैट समझौते में विकासशील देशों को अपने पेटेन्ट कानून बदलने के लिये दिया गया समय) में कोई भी नई दवा बाजार में नहीं ला पायेंगे और देश भारी पैमाने पर दवा आयात पर निर्भर हो जायगा। अनिवार्य लाइसेंस पद्धति, जो दवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित कराती है, भी कमजोर हो जायेगी। क्योंकि ट्रिप्स समझौते में दवा की अनुपलब्धता की स्थिति में किसी तीसरी पार्टी को लाइसेंस जारी करने का अधिकार भी छीन लिया गया है। दवाओं के नये फार्मूलेशन बनाने और उनका पेटेन्ट कराने के लिये रखी गयी कड़ी शर्त "यह खोज आर्थिक महत्व का तकनीकी एडवांसमेंट रखती हो" का बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारी रायल्टी कमाने में इस्तेमाल करेंगी और नई तकनीकों (दूसरी पीढ़ी की तकनीक) के विकास को रोक देंगी। गैट समझौते के तहत अब किसी उत्पाद का आयात ही उस पर प्राप्त पेटेन्ट (किसी भी देश में) का क्रियान्वयन माना जायगा, अतः सिर्फ आयात उत्तरदायित्वों को पूरा न करने की स्थिति में ही अनिवार्य लाइसेंसिंग (किसी तीसरी पार्टी को) दी जा सकेगी। इसका सीधा अर्थ यह है कि अब बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ दवाओं का आयात ही करेंगी। नई तकनीकों का हस्तांतरण (आयातक देशों में) नहीं हो पायेगा।

नई पेटेन्ट व्यवस्था में दवाओं की घरेलू कीमतों पर असर

नई पेटेन्ट व्यवस्था में दवाओं के घरेलू दाम 5 से 20 गुने बढ़ जायेंगे। देश का दवा उद्योग 1970 से पूर्व की स्थिति में आ जायेगा, जब दवाओं की कीमतों पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं था और दवा बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपनी मुनाफाखोर नितियों के तहत दवाओं के दाम निर्धारित करती थीं। उदाहरण के लिये एक अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी बेरालगन कीटोन नाम की दवा को 24000 रूपये प्रति किलोग्राम की दर से बेचती रही। जब सरकार ने इसकी जाँच करायी तो दवा की कीमत मात्र 1810 रूपये प्रति किलोग्राम निकली। अब फिर

(नये पेटेन्ट कानूनों के बाद) बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मुनाफे हजारों प्रतिशत में होंगे। प्रक्रिया पेटेन्ट के स्थान पर उत्पाद पेटेन्ट व्यवस्था लागू हो जाने पर दवाओं की कीमतों में कितना अन्तर आ जायेगा, यह नीचे दी गयी तालिका से स्पष्ट हो जायेगा। भारत, पाकिस्तान, अमेरिका और ब्रिटेन में दवाओं की कीमतों के अन्तर के बारे में "नेशनल वर्किंग ग्रुप आन पेटेन्ट लाज" द्वारा किये गये एक अध्ययन के आधार पर नीचे तालिका दी गयी है।

दवा का नाम	भारत	पाकिस्तान	अमेरिका	ब्रिटेन
आफ्लाक्सेसिन	66.00	117.23	196.27	155.33
सेफेड्राक्सिल	30.00	82.68	325.88	104.79
सिप्रोफ्लॉक्सेसिन	51.00	234.63	305.21	315.96
नारफ्लॉक्सेसिन	39.36	125.50	616.15	252.77
टोबरामाइसीन	22.17	116.31	395.32	75.30
डाइक्लोफेनाक	5.67	55.80	239.47	95.84
पाइराक्सीन	13.87	78.12	603.93	166.93
रैनीटाइडीन	29.03	260.40	744.65	481.31
फैमोटाइडीन	26.24	260.40	726.14	500.27
ऑनेपैराजेल	71.25	अनुपलब्ध	992.46	684.05
एटनोलॉल	7.50	86.63	228.36	103.21
डिलटियाजोन	20.24	74.40	165.10	78.99
बनालाप्रिन	9.00	37.20	230.83	147.97
प्राजोसिन	16.50	13.64	159.24	39.50
एनियोडारोन	45.00	अनुपलब्ध	673.67	157.98
एसाइक्लोवीर	33.75	363.32	356.74	577.68
केटाकोनाजोल	43.00	221.96	673.67	250.14
माइनाक्सीडिल	31.25	अनुपलब्ध	1311.55	1053.20
एजटैनीजोल	6.00	120.90	436.36	100.05
टरफैनाडीन	13.50	60.93	293.17	78.99
अप्रोजोलान	5.40	अनुपलब्ध	171.21	22.64
ट्रोजोडोन	15.25	17.77	291.01	108.48
ब्यूसपीरोन	4.05	89.69	150.60	168.51
मिटोजन ट्रोन	446.25	अनुपलब्ध	5176.64	7921.64
कारबोप्लाटीन	746.25	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	3608.26
बिनकिस्टीन	28.80	323.16	1068.37	542.92
बिन ब्लास्टीन	108.00	333.85	1102.01	541.87
बस्ट्रोस्टीन	16.95	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	550.30
टोपोसाइड	158.60	अनुपलब्ध	3612.47	750.93
फ्लूसैटिन	29.00	618.76	517.83	562.41

जैनफीब्रोजील	341.00	178.56	1294.89	1263.84

ऊपर दी गयी तालिका में 1 डालर = 30.86 रूपया 1 पाउंड = 52.66 तथा 1 पाकिस्तानी रूपया = 1.24 रूपये लिया गया है।

अमेरिका में उत्पाद पेटेन्ट के जो कानून इस समय चल रहे हैं लगभग वैसे ही कानून ब्रिटेन और पाकिस्तान में हैं। इसीलिये पाकिस्तान और ब्रिटेन में दवाओं की कीमतें अमेरिका में दवाओं की कीमतों के लगभग बराबर है। भारत में प्रक्रिया पेटेन्ट के कानून होने के कारण दवाओं की कीमतें काफी कम हैं। उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत में दवाओं की कीमतें अमेरिका में दवाओं की कीमतों से 3 गुने से लेकर 35 गुने तक कम हैं। पाकिस्तान में दवाओं की कीमतों की तुलना में भारत में कीमतें 2 गुने से लेकर 22 गुने तक कम हैं। इस समय भारत और बांग्लादेश में दवाओं की कीमतें लगभग बराबर हैं। इसका कारण है कि बांग्लादेश में पेटेन्ट कानून भारतीय पेटेन्ट कानूनों की तरह है। अतः यह एकदम से स्पष्ट है कि गैट करार की नई पेटेन्ट व्यवस्था लागू होने से दवाओं की कीमतें भयानक रूप से बढ़ेंगी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मुनाफे बहुत बढ़ जायेंगे। हमारे संविधान में प्रदत्त नीति निर्धारक तत्वों का उल्लंघन होगा क्योंकि इनके अनुसार सरकारों को सस्ती और अच्छी दवाएँ देश की जनता के लिये उपलब्ध कराने की नीतियाँ बनानी चाहिए। सबसे ऊपर मौलिक अधिकार "जीवन का अधिकार" (राइट टू लाइफ) का क्या होगा?

रायल्टी : अधिकतम मुनाफा

अब तक बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ देश में दवा उत्पादन कर एवं बेच कर मुनाफा कमा रही थीं, परन्तु गैट समझौते के बौद्धिक सम्पदा (ट्रिप्स) प्रावधानों ने यह समीकरण बदल दिया है। अब उन्हें भारत में कारोबार करने के बजाय बाहर से ही कामकाज करने में ज्यादा लाभ नजर आ रहा है। पुराना भारतीय पेटेन्ट कानून रद्द होने और नया कानून बनने पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ पेटेन्ट दवाइयों पर रायल्टी की मांग करेंगी। इण्डियन ड्रग्स मैनुफैक्चर्स एसोसिएशन का कहना है कि अब तकरीबन 200 दवाइयों पर, जिन्हें भारतीय कम्पनियाँ बनाती व बेचती हैं, बहुराष्ट्रीय कम्पनी को रायल्टी देनी होगी। एसोसियेशन के मुताबिक पिछले कुछ वर्षों में सरकार द्वारा मंजूर की गयी 240 नई दवाइयों में 90 प्रतिशत पेटेन्ट के दायरे में आती हैं। इनमें कई जरूरी और महत्वपूर्ण दवाइयाँ शामिल हैं। 4 प्रतिशत की अधिकतम रायल्टी दर भी अब बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को मंजूर नहीं होगी और वे अपनी इच्छानुसार उच्च रायल्टी दरों की मांग करेंगी।

ज्यादातर बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों के शोध विकास केन्द्र स्विट्जरलैण्ड में है। कई महत्वपूर्ण मूल औषधियों के फार्मूले उनके नाम होने की वजह से उन्हें पेटेन्ट का अधिकार प्राप्त होगा और वे हर औषधि पर 15 वर्षों तक निर्बाध रूप से रायल्टी पाती रहेंगी। इन सभी कम्पनियों का शोध आधार भारत के बाहर है और इस क्षेत्र में न केवल इन्होंने काफी धन निवेश किया है बल्कि उन्हें काफी विशेषज्ञता हासिल है। ऐसे में अपने शोध का लाभ उठाते हुए वे

जिन नई दवाइयों को इजाद करेंगी उन पर भी रायल्टी उन्हें उन फार्मूलों का इस्तेमाल करने वाले देशों से मिलती रहेगी। गैट समझौता हो जाने से उनकी सबसे बड़ी चिन्ता पेटेन्ट चोरी की दूर हो गयी है। स्विट्जरलैण्ड या किसी भी अन्य विकसित देश में बैठे–बैठे ही उन्हें रायल्टी से इतना धन प्राप्त हो जायेगा जितना उन्हें भारत में इकाई लगा कर भी नहीं होता।

सन्दर्भ

1. हाथी कमिटी टू 1978 ड्रग पॉलिसी टू न्यू ड्रग पॉलिसी (ए जर्नी इन रिवर्स डाइरेक्शन), लेखक जे. एस. मजूमदार, नेशनल कैम्पेन कमिटी फॉर ड्रग पॉलिसी द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ–1।
2. ड्रग इंडस्ट्री एण्ड द इंडियन पीपुल पुस्तक के डॉक्टर धवले के लेख से उद्धृत, पृष्ठ–57।
3. उपरोक्त पुस्तक के डॉ. शंभू मैत्र के लेख से उद्धृत, पृष्ठ–59।
4. 'नेशनल वर्किंग ग्रुप आन पेटेन्ट लाज' का साहित्य।

झूठ पर टिका अर्थशास्त्र

इस बात को कहने और स्वीकार करने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने तीसरी दुनिया में अपने व्यापारिक लाभ के लिए झूठ का सहारा लिया है। लाभ के झूठे आँकड़े पेश करके उसे कम बताती हैं, कर चोरी करती हैं। कोलंबिया में दवा बनाने के कई निगमों ने वित्तीय निगमों को बताया कि उनके औसत मुनाफे 6.7 प्रतिशत हैं। जाँच करने पर पता चला कि वे मुनाफे 136 प्रतिशत थे। मालागासी गणराज्य में इसी प्रकार के काले कारनामों के कारण अमेरिकी, यूनानी और बेल्जियम की पूँजी से चलने वाले सोसाइटे अमेरिकानो ग्रेसी मल्गाचे के प्रबंधको को जेल की हवा खानी पड़ी। ऐसी स्थिति में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ कितना ज्यादा फायदा कमाती हैं इसका अंदाजा लगा पाना कठिन है। क्योंकि इनके लाभ के जो आँकड़े हमें उपलब्ध होते हैं वे महज सार्वजनिक रूप से घोषित हैं तथा इस पर कर अदा करना पड़ता है। कर चोरी के लिए ये कम्पनियाँ अपने फायदे असलियत से बहुत कम बताती हैं।

ये निगमें केवल अपने लाभ की राशि को ही कम करके नहीं बताती हैं बल्कि अपने सालाना कारोबार को भी कम करके बताती हैं, ताकि असली राशि से काफी कम करके बताये गये लाभांश को न्यायोचित और सही ठहराया जा सके। 1988–89 में इलाहाबाद जिले में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का दवा के क्षेत्र में कैसा कारोबार रहा, इस पर इन पंक्तियों के लेखक ने एक सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण अध्ययन के परिणामों को जब इन कम्पनियों के राष्ट्रीय स्तर के कारोबार के आँकड़ों के सन्दर्भ में देखा गया तो काफी विसंगति नजर आयी। नीचे की सारणी से स्पष्ट है

कम्पनी का नाम	इलाहाबाद में वर्ष 1988–89 का कारोबार	भारत में कुल कारोबार वर्ष 1988–89
ग्लैक्सो	1.10 करोड़ रूपये	194.99 करोड़ रूपये
बारोज बेल्कम	1.10 करोड़ रूपये	103.42 करोड़ रूपये
हेक्स्ट	1.00 करोड़ रूपये	239.37 करोड़ रूपये
फाइजर	0.90 करोड़ रूपये	82.37 करोड़ रूपये
पार्क डेविस	0.80 करोड़ रूपये	100.80 करोड़ रूपये

यदि ऊपर दिये गये किसी भी कम्पनी के एक जिले (इलाहाबाद) के कारोबार के आँकड़ों को भारत में उसी वर्ष के उनके कुल कारोबार से औसतन तुलना की जाय तो काफी विसंगति नजर आती है। पूरे भारत में लगभग 400 जिले हैं। इलाहाबाद “बी” श्रेणी का शहर है यानी “ए” श्रेणी और “सी” श्रेणी के बीच का शहर। थोड़ी देर के लिए यदि उपरोक्त पाँच बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कारोबार को दृष्टि में रख कर इलाहाबाद को 400 जिलों में से औसत जिला मान लिया जाय तो इलाहाबाद में इन कम्पनियों के 1988–89 के कारोबार को आधार मानकर यह कहा जा सकता है कि वर्ष 1988–89 में –

ग्लैक्सो का भारत में सालाना कारोबार	1.10 ग 400	त्र 440 करोड़ रूपये
वारोज वेल्कम का भारत में सालाना कारोबार	1.10 ग 400	त्र 440 करोड़ रूपये
हेक्स्ट का भारत में सालाना कारोबार	1.0 ग 400	त्र 400 करोड़ रूपये
फाइजर का भारत में सालाना कारोबार	0.90 ग 400	त्र 360 करोड़ रूपये
पार्क डेविस का भारत में में सालाना कारोबार	0.80 ग 400	त्र 320 करोड़ रूपये

लेकिन ग्लैक्सो वर्ष 1988—89 का राष्ट्रीय कारोबार मात्र 194.99 करोड़ रूपये बताती है और वारोज वेल्कम तो केवल 103.42 करोड़ रूपये ही दर्शाती है। कहाँ 440 करोड़ और कहाँ 194.99 या 103.42 करोड़ रूपये। यह साधारण सी गणित इन कम्पनियों के बहुत बड़े झूठ की तरफ इशारा करती है।

पारराष्ट्रीय निगमों ने अपने व्यापार के प्रचार—प्रसार की पूरी इमारत ही झूठ पर खड़ी की है। प्रसार माध्यमों—रेडियो, टेलीविजन, पत्र—पत्रिकाओं, एजेन्टों के माध्यम से डॉक्टरों को दी जाने वाली जानकारियों में ये कम्पनियाँ झूठ का सहारा लेती हैं। दुनिया के तमाम सारे हल्कों में यह बात काफी गम्भीरता से स्वीकार की गयी है कि बड़ी कम्पनियाँ खासकर तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों में झूठे विज्ञापनों के जरिये ऐसी जानलेवा दवाओं, गैर—जरूरी एवं नुकसानदेह टॉनिकों का व्यापार कर रही हैं जो दुनिया के तमाम देशों में प्रतिबंधित हैं। विडम्बना यह है कि ये कम्पनियाँ अपने विज्ञापनों में उन दवाओं को बहुत कारगर सिद्ध करती हैं तथा इस बात को जनता से लेकर समूचे चिकित्सा जगत में सही प्रमाणित कर दिया जाता है। हाथी कमेटी की रपट में भी इस बात को बड़े जोरदार ढंग से उठाया गया है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अनैतिक तौर—तरीकों को उदाहरण से समझा जा सकता है कि किस प्रकार ये कम्पनियाँ खतरनाक दवाओं का गोरखधन्धा करती हैं और मानव जीवन को धरती पर रेंगने वाले कीड़े—मकोड़े समझती हैं। अमेरिकी कम्पनी सीबा—गायगी का मामला काफी दिलचस्प है। 1934 में इस कम्पनी ने क्लिओक्विनाल नाम से दस्तरोधी दवा बनाना शुरू किया। 1935 से ही अर्जेन्टाइना के डॉक्टरों ने रिपोर्ट भेजनी शुरू कर दी कि इस दवा के कुप्रभाव हैं लेकिन कम्पनी ने इन रिपोर्टों को दबाये रखा।

1962 में कम्पनी ने यह प्रचार किया कि जनता इन दवाओं का प्रयोग पशुओं पर मत करे लेकिन उसी समय उसने यह कहा कि यह दवा मनुष्यों के लिये सुरक्षित है। डॉक्टर ओली हैन्सन जो कि स्वीडिश बाल रोग विशेषज्ञ थे, ने यह तथ्य पाया कि दवा कम्पनी का यह दावा कि हानिकारक तत्व आहार नाल में अवशोषित नहीं होते, गलत है। इसका खंडन करते हुए उन्होंने अपनी रिपोर्ट लिनसेट 1966 में प्रकाशित किया।

उसी बीच जापान में कई हजार लोग लगातार दर्द, लकवा तथा अंधापन से ग्रसित हो गए। यही नहीं इस दवा के जहरीले असर से तमाम लोग मर गये। डॉक्टरों के अनुसार इस दवा को खाने के बाद स्मान या सूबाक्यूट माइलो आप्टिक न्यूरपैथी रोग हो जाता है।

सीबा–गायगी को न्यायालय के कटघरे में खड़ा किया गया। डॉ. हैन्सन ने अपनी मर्जी से एक विशेष गवाह की भूमिका निभाई।

इस दवा निर्माता कम्पनी की तरफ से यह दलील दी गयी कि इन सारी बीमारियों के लिए खास किस्म का जीवाणु जिम्मेदार है, क्लिओक्विनाल का कोई कुप्रभाव नहीं है। लेकिन टोक्यो जिला न्यायालय ने यह नहीं माना। सीबा–गायगी के खिलाफ फैसला देते हुए न्यायालय ने यह पाया कि कम्पनी के आन्तरिक दस्तावेजों से यह बात साफ है कि कम्पनी यह बात अच्छी तरह जानती थी कि क्लिओक्विनाल के कारण "स्मान" होता है। यह मुकदमा आठ साल बाद निर्णित किया गया और कम्पनी को 20.30 करोड़ पाउंड जुर्माना पीड़ितों को देना पड़ा। इसके अतिरिक्त इसे सार्वजनिक रूप से जनता से क्षमा माँगनी पड़ी।

इस सबके बावजूद कम्पनी ने क्लिओक्विनाल पर आधारित दवाएँ विश्व के अन्य हिस्सों में बेचना जारी रखा। पुनः बाद में स्वीडन में कई मौतों के बाद स्वीडन, डेनमार्क तथा नार्वे ने इन दवाइयों का बहिष्कार करना शुरू कर दिया। इसके परिणामस्वरूप अप्रैल 1985 में घाटे की स्थिति उत्पन्न होने पर कम्पनी ने इन उत्पादों को विश्व से उठा लिया। लेकिन बाद में इस कम्पनी ने धीरे से भारत में इस दवा का व्यापार करना शुरू कर दिया और आज यह दवा कई प्रचलित नामों से भारतीय बाजारों में उपलब्ध है।

सीबा–गायगी का एक दूसरा कांड डॉ. हैन्सन द्वारा खोला गया जब कम्पनी के अंदरूनी दस्तावेजों में उन्होंने पाया कि बहुत ज्यादा लोग उस समय प्रचलित दो दवाएँ टेड्रिल और बुटाजोलाडीन के प्रयोग से मर गये। मेडिकल जर्नल ने अपनी रिपोर्ट में 150 मौतें होने की बात लिखी थी, जबकि सीबा–गायगी के दस्तावेजों से मौतें एक हजार से ज्यादा थीं। अमेरिकी दवा विशेषज्ञ मिल्टन सिल्वर मैन ने अपनी 162 पेज की रिपोर्ट जिसका शीर्षक "प्रिस्क्रिप्शन फार डेथ" में कहा है कि इन अन्तरराष्ट्रीय दवा उद्योगों में सामाजिक उत्तरदायित्वों का सर्वथा अभाव है।

आठ साल के अध्ययन के बाद दी गयी रिपोर्ट से यह साबित होता है कि तीसरी दुनिया के देशों में दवा उद्योग में लगी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ "खुला दोहरा मापदण्ड" अपना रही हैं और अपने उत्पादों को गरीब देशों में बेचकर आर्थिक शोषण के साथ–साथ दवाओं का कुप्रभाव भी फैला रही हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि इन अविकसित देशों में डॉक्टर केवल वे ही आँकड़े प्राप्त करते हैं जो दवा कम्पनियों के मेडिकल रिप्रेजेन्टेटिव उन्हें उपलब्ध कराते हैं किसी चिकित्सक के पास मेडिकल जर्नल तथा शोध –पत्रों को पढने का समय ही नहीं होता।

अब तो विकसित और धनी देशों एवं इन कम्पनियों की आका सरकारें भी इनकी हरकतों से परेशान रहने लगी हैं। अमेरिका के खाद्यान्न एवं औषध प्रशासन (फूड ऐण्ड ड्रग ऐडमिनिस्ट्रेशन) ने इस बात पर काफी चिन्ता जाहिर की और दवा निर्माता कम्पनियों को एक शिकायती पत्र जारी किया कि ये झूठे विज्ञापन प्रसारित कर अपनी दवाएँ बेच रही हैं और लोगों को मूर्ख बनाकर अंधाधुंध मुनाफा कमा रही हैं। 1989 में इन कम्पनियों के नाम भेजे गये शिकायती पत्र में कहा गया था कि औषध के इतिहास में इतने व्यापक पैमाने पर गलत विज्ञापनों का प्रसारण पहले कभी नहीं हुआ था। जापान में भी सरकार ने कुछ ऐसे तरीके अपनाना शुरू किया है ताकि दवा निर्माता निगमें मनचाही धंधाखोरी न कर सकें। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने तो सभी देशों की सरकारों को यह सलाह दी है कि वे शासन की तरफ से दवाओं की बिक्री

का इन्तजाम करें ताकि डॉक्टरों को या मरीजों को निहित स्वार्थ वाले तत्वों (बहुराष्ट्रीय निगमों की तरफ इशारा) पर निर्भर न रहना पड़े। ब्रिटेन की सरकार पिछले कुछ सालों से अपने यहाँ की कतिपय दवा निर्माता कम्पनियों की हरकतों से परेशान रही है। इन कम्पनियों ने अपने व्यापार के प्रसार के लिए जिस तरह के गलत प्रचार एवं मूल्य वृद्धि का सहात लिया है वह सरकार के लिए सिरदर्द बन गया है। ग्लैक्सो कम्पनी पिछले कुछ सालों में 'जैन्टेक' नामक दवा की बदौलत दुनिया के पहले नम्बर की कम्पनी बन गयी। अल्सर में इस्तेमाल होने वाली इस साधारण सी दवा के विज्ञापन पर ब्रितानी बहुराष्ट्रीय कम्पनी ने इतना खर्च किया कि 1989–90 में केवल इस टिकिया की बिक्री पूरी दुनिया में 6000 करोड़ रूपये के बराबर हुई। जबकि जिस विज्ञापन के सहारे यह कम्पनी इस दवा को इतना बेंच सकी उसमें बहुत कुछ झूठ था।

गरीब मुल्कों के स्थानीय बाजारों पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिये बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ बड़े डॉक्टरों, फार्मासिस्टों व दवा विक्रेताओं को सशक्त माध्यम के रूप में इस्तेमाल करती हैं। इन कम्पनियों के मेडिकल प्रतिनिधि आये दिन शहरों के नामी–गिरामी डॉक्टर के यहाँ चक्कर लगाते रहते हैं और अपनी कम्पनियों की दवाओं, टॉनिकों के सम्बन्ध में छपे फोल्डर, पैम्पलेट व अन्य साहित्य बाँटकर रोगियों के पर्चे पर उन दवाओं व टॉनिकों को लिखने के लिए राजी कर लेते हैं। लगभग हर महीने कम्पनी की ओर से भेंट के तौर पर कीमती सामान उनके घरों में रख जाते हैं। उन 'उपहारों' में घड़ियाँ और थर्मस फ्लास जैसे सस्ते सामानों से लेकर फ्रिज, रंगीन टेलीविजन और मारूति कारें तक शामिल होती हैं। शहर और डॉक्टरों की प्रतिष्ठा तथा उनके स्तर के मुताबिक 'उपहारों' की कीमत तय होती है। बड़े डॉक्टरों का तो आलम ही दूसरा है, इलाहाबाद जैसे दूसरे दर्जे के शहर के एक डॉक्टर को एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी ने मारूति कार भेंट में दी। इस डॉक्टर ने कुछ वायदाखिलाफी की और कुछ ही माह बीते थे कि उसने इस कम्पनी की उस विशेष दवा को रोगियों के परचे पर लिखना ही बन्द कर दिया जिसके लिए उसे मारूति कार भेंट की गयी थी। कम्पनी इस बात को लेकर काफी नाराज रही। इलाहाबाद के एक जाने–माने अस्थि रोग विशेषज्ञ ने बताया कि एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी ने अपनी एक नई दवा को रोगियों के पर्चे पर लिखने के लिए उन्हें प्रतिमाह 20,000 रूपये सुविधा शुल्क देने का प्रस्ताव रखा था।

बड़े शहरों के बड़े डॉक्टरों को विश्वास में लेने के पीछे इन कम्पनियों का सिर्फ एक उद्देश्य होता है – अपनी दवाओं का अधिकतम प्रचार करना। इन शहरों के बड़े डॉक्टरों की नकल करते हुए छुटभैये डॉक्टर भी उसी दवा या टॉनिक को सम्बन्धित रोग के लिए अपने रोगियों को लिखने लगते हैं और अनुकरण का यह सिलसिला छोटे जिलों से होता हुआ सुदूर गाँवों तक जारी रहता है। यही कारण है कि बहुराष्ट्रीय निगमें अपने कुल लागत का बड़ा हिस्सा 'उपहारों' और प्रचार साहित्य के वितरण पर खर्च करती हैं।

सरकार और न्यायपालिका भी सवालों के घेरे में

एक बहुत स्वाभाविक सा प्रश्न बार–बार कौंधता है कि आखिर जब तमाम सारे आयोगों की रपटों, डॉक्टरों, मेडिकल प्रतिनिधि संघों, उपभोक्ता संघों, पत्र–पत्रिकाओं में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की काली करतूतों, दवाओं के नाम पर उनके जहरीले व्यापार के विषय में खूब लिखा–कहा जाता रहा है और सरकार से माँग की जाती रही है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का या तो राष्ट्रीयकरण किया जाये या उन्हें देश निकाला दिया जाय, लेकिन सरकार ने इन सब सवालों की अनसुनी करते हुए उल्टे इन कम्पनियों को बढ़ावा क्यों दिया? यह सवाल हाथी रिपोर्ट के बाद और गहरा जाता है। इसे आश्चर्य ही कहेंगे कि हाथी कमेटी की रपट से प्रभावित होकर बाँग्लादेश ने अपने यहाँ की दवा नीति में आमूल–चूल परिवर्तन किया था और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के तमाम सारे विरोधों एवं अन्तरराष्ट्रीय दबावों के बावजूद उसने अपनी नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। लेकिन वहीं दूसरी तरफ भारत सरकार ने रपट की प्रमुख संस्तुतियों को नजर अंदाज करते हुए जिस तरह की नीति बनायी वह राष्ट्र विरोधी ही नहीं मानवता–विरोधी भी रही है। 1978 में बनाई गयी इस दवा–नीति के तहत भारतीय दवा–उद्यमियों को बढ़ने एवं बहुराष्ट्रीय निगमों पर अंकुश लगाने का जो एक अवसर आया था वह भी उस समय खत्म हो गया जब सरकार ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा इस नीति का विरोध किये जाने पर 94 मूल रसायन वाली दवाओं पर लाइसेंस खत्म कर दिया तथा इन कम्पनियों पर अंकुश लगाने वाले 'विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम (फेरा)' एवं एम. आर. टी. पी. जैसे कानूनों में संशोधन करके इनकी लूट के लिए रास्ता साफ कर दिया।

सरकार ने जब कभी इन कम्पनियों पर अंकुश लगाने का प्रयास किया तो इन कम्पनियों ने अपने लाभांश में कटौती करने वाली किसी कानूनी प्रक्रिया का निर्माण होते देखकर सिर पर आसमान उठा लिया। इसके कई उदाहरण हैं। भारत–चीन युद्ध के समय जब भारत सरकार ने जीवनरक्षक दवाओं के दाम में कटौती करने का प्रावधान किया तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने उसका सबसे जबरदस्त विरोध किया। 1978 की दवा–नीति के खिलाफ तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ एकजुट होकर विरोध करने लगीं। भारत में काम कर रही इंगलैण्ड की बहुराष्ट्रीय कम्पनी ग्लैक्सो ने 1978 की दवा–नीति के संदर्भ में भारत की विधायिका (संसद) की बड़ी तीखी आलोचना की और उस पर आरोप लगाया कि वह भारतीय दवा उद्यमियों का पक्षपात कर रही है। सरकार पर पड़ने वाले दबाव की तरफ इशारा करते हुए रसायन एवं उर्वरक मंत्री ने संसद में इस बात को स्वीकार किया था कि नई दवा नीति (1986) में विलम्ब इसलिए हो रहा क्योंकि 'दवा निर्माताओं की अनेक लॉबी' सरकार पर अपने–अपने विभिन्न हितों की पूर्ति के लिए लगातार दबाव डाल रही है। 1982 में संसद में तत्कालीन रसायन एवं उर्वरक मंत्री ने ग्लैक्सो दवा कम्पनी की करतूतों का पर्दाफाश करते हुए यह कहा था कि इस कम्पनी ने भारतीय कानूनों का उल्लंघन करके अनाधिकृत उत्पादन, बिना कानूनी अनुमति के उद्योग लगाने, बिना सरकार द्वारा कीमत निर्धारित किये दवाओं की बिक्री करने जैसे गम्भीर अपराध किये हैं। लेकिन सरकार जब इस पर रोक के लिए कानून बनाती है तो उस पर ये कम्पनियां पक्षपात करने का आरोप लगाती हैं। 'उलटा चोर कोतवाल को डाँटे' वाली हाल। लेकिन विडम्बना तो यह है कि सरकार ने इनके दबाव के सामने घुटने टेककर हाथी कमेटी से लेकर

केलकर समिति तक की सिफारिशों को जमीन की सात पर्तों के नीचे गाड़ दिया तथा बदले में ऐसे कानून बनाये जो इन्हीं के व्यापारिक हितों को पूरा करते हैं। यह इस बात से ही स्पष्ट हो जाता है कि हाथी कमेटी ने सभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को राष्ट्रीयकृत किये जाने एवं उनके शेयर को क्रमश : 40 प्रतिशत तथा 26 प्रतिशत तक किये जाने की सिफारिश की थी। सरकार ने तो पहले इनका शेयर घटाकर 40 प्रतिशत कर दिया था लेकिन अभी हाल में सरकार ने उसे पुनः बढ़ाकर 51 प्रतिशत कर दिया है। 1986 में बनी नई दवा–नीति में भी कोई ऐसी व्यवस्था नहीं दी गयी जिससे इन कम्पनियों की लूटखोर एवं आदमखोर प्रवृति पर कोई अंकुश लगाया जा सके। एक बहुत बड़ा सवाल जो इस देश की जनता के साथ बहुत बड़ी त्रासदी बन चुका है कि यहाँ के लोगों को मुनाफाखोरी के चक्कर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ दवा के नाम पर जहर दे रही हैं और सरकार उनके इस काम में मददगार है, ऐसा क्यों? जिन दवाओं को विश्व स्वास्थ्य संगठन (चिकित्सा और दवा के क्षेत्र में सर्वाधिक एवं प्रामाणिक जानकारी रखने वाला) से लेकर इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च जैसे अनेक संगठनों ने नुकसानदेह एवं जहरीली घोषित कर दिया हो और जो दवाएँ अमेरिका और ब्रिटेन जैसे विकसित देशों से लेकर बाँग्लादेश जैसे गरीब मुल्कों तक में प्रतिबंधित हों उन्हें भारत सरकार अपने यहाँ बनने और बिकने की छूट क्यों देती है? कई बार सरकार के रूख से यह साफ जाहिर हुआ कि वह बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दबाव में आकर काम करती है। फिनाइल बूटाजोन और आक्सीफिन बूटाजोन के मामले में तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दबाव का आभास दो केन्द्रीय स्वास्थ्य राज्य मंत्रियों के संसद में दिये गये जवाब से ही होता है। राज्य सभा में स्वास्थ्य राज्यमंत्री का कहना था कि इन दवाओं के निश्चय ही कुछ घातक प्रभाव हैं। लेकिन भारत में सरकार ने मांसपेशियों तथा तंत्रिकातंत्र सम्बन्धी रोगों में इन दवाओं के लगातार लेकिन सीमित इस्तेमाल की इजाजत दी है। कुछ साल पहले नुकसानदेह दवाओं के सम्बन्ध में सवालों का जवाब देते हुए भारत सरकार की तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री सरोज खापर्डे ने कहा था कि फिनाइल बूटाजोन, आक्सीफिन बूटाजोन एवं एनाल्जिन से ब्लड कैंसर की आशंका रहती है। मंत्री ने आगे कहा कि इसके बावजूद इन दवाओं को तकनीकी दबाव में प्रतिबंधित नहीं किया गया।1 यह तकनीकी दबाव कोई मंत्री कभी स्पष्ट नहीं करता। लेकिन स्पष्ट रूप से यह दबाव इन दवाओं के निरापद विकल्पों का अभाव नहीं होता बल्कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का दबाव होता है।

दवा के नाम पर मौत का व्यापर करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सरकार ने 1986 की दवा–नीति घोषित कर मूल्य–वृद्धि का ताहफा भेंट किया। इस तोहफे से इन कम्पनियों को खुले आम 100 प्रतिशत मुनाफा कमाने का मौका मिला।

ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इतनी सशक्त हैं या सरकारों को इतनी प्रिय कि मरीजों की जान की कीमत पर उन्हें अपने फायदे के लिए भरपूर छूट दी जाती है। नई औद्योगिक नीति के तहत तो जिस तरह से इन्हें सर्वोच्चता दी गयी है उसे देखते हुए यह कहना गलत न होगा कि भारत का बचा–खुचा दवा उद्योग भी इनके कब्जे में चला जायेगा। दवा उद्योग पर एकाधिकार की स्थिति में ये कम्पनियाँ खुलेआम मनमाने दाम पर मनमानी दवाएँ इस गरीब देश में बनायेंगी और बेचेंगी।

राजनेताओं और सरकारी अधिकारियों को खरीदकर अपने मनमुताबिक नीतियाँ बनवाने या अनचाही नीतियों में परिवर्तन कराने या उन्हें रद्द करवाने का काम बहुराष्ट्रीय

कम्पनियाँ करती रही हैं। उनकी ऐसी करतूतों के उदाहरण केवल तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों में ही नहीं धनी देशों में भी उपलब्ध हैं। जॉन ब्रैथव्हाइट ने अपनी किताब 'कार्पोरेट क्राइम इन फार्मास्युटिकल इंडस्ट्री' में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा विभिन्न देशों की विभिन्न सरकारों को दी गयी रिश्वत की कई मिशालें दी है। ब्रैथव्हाइट ने लिखा है कि इटली में एक दर्जन दवा निर्माता कम्पनियों ने एकजुट होकर वहाँ की औद्योगिक नीति को वापस कराने में सफलता प्राप्त कर ली। इस काम के लिए प्रति कम्पनी 80,000 डालर (20 लाख रूपया) की दर से इटली की क्रिस्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी को कुल 10 लाख डालर (250 लाख रूपया) रिश्वत दी गयी थी मर्क ऐण्ड कम्पनी ने एक विदेशी सरकार के स्विट्जरलैण्ड की अपनी सहायक कम्पनी मर्क शार्प ऐण्ड दोहमे के माध्यम से 73 लाख डालर (575 लाख रूपये) रिश्वत दी।

1971 से 75 के बीच अमेरिकी होम प्रॉडक्ट ने 41 देशों की सरकारों को व्यापार के लिए सरकारी अनुमति प्राप्त करने हेतु 34 लाख डालर (साढ़े 8 करोड़ रूपये) रिश्वत दी थी। इसके अतिरिक्त इसने 38 लाख डालर (साढ़े 9 लाख रूपये) ' आवश्यक राजनीतिक उद्देश्य' के लिए खर्च किया था।

इस संदर्भ में भारतीय न्यायपालिका की भूमिका को भी रेखांकित करना जरूरी है। औषध तकनीकी सलाहकारी परिषद् (ड्रग टेक्निकल ऐडवाइजरी बोर्ड) ने 1982 में 18 दवाओं के निर्माण पर पाबंदी लगाने के लिए सिफारिश की थी। इन दवाओं के भयंकर कुप्रभाव को देखते हुए भारत के दवा नियंत्रक ने इन पर पाबंदी लगा दी। लेकिन बम्बई उच्च न्यायालय ने इस आदेश पर रोक लगा दी। बोहरिंगर नाल नामक कम्पनी ने सरकार के आदेश को बम्बई उच्च न्यायालय में चुनौती दिया। न्यायालय ने आदेश के खिलाफ स्थगन आदेश जारी कर दिया। इसी प्रकार 13 जून 1982 में भारत के दवा नियंत्रक ने एक आदेश जारी कर बेहद नुकसानदेह दवा ओस्ट्रोजन–प्रोजेस्टेरान के सम्मिश्रण पर रोक लगा दी। लेकिन इस आदेश के खिलाफ सीबा–गायगी एवं कुछ अन्य कम्पनियों ने कलकत्ता और बम्बई उच्च न्यायालय से स्थगनादेश ले लिया। उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये इन स्थगनादेशों का परिणाम यह हुआ कि निर्माता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को इन नुकसानदेह दवाओं का कारोबार जारी रखने का मौका मिल गया। ऐसी सैकड़ों जहरीली दवाइयाँ न्यायालय के इन आदेशों के चलते भारतीय मरीजों को खिलाई जा रही हैं और इनसे होने वाली करोड़ों रूपये की आमदनी बाहर जा रही है। दूसरे, इन आदेशों ने सरकार को इन कम्पनियों के खिलाफ इस तरह की कोई कार्यवाही न करने का बहाना दे दिया है। यही नहीं सरकार ने इनका इस्तेमाल अपने खिलाफ लगने वाले आरोपों से बचने के लिए ढाल के रूप में किया है।

1983 में प्रतिबन्धित दवाएं

भारत सरकार ने 23 जुलाई 1983 में गजट नोटीफिकेशन एक्स 11014/2/83 डी. सी. एम. एस. एण्ड पी. एफ. ए. के तहत 27 प्रकार की मूल दवाओं का निर्माण और व्यापार प्रतिबन्धित किया। लेकिन इनमें से कुछ दवाएं अभी भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बनायी और बेंची जा रही हैं। इन दवाओं के नाम नीचे दिये गये हैं :

दवाओं के नाम	निर्माता बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ	घातक प्रभाव
1. सिनेल्जेसिक	ज्यौर्फी मैनर्स	अत्यन्त घातक, पसीना द्वारा शरीर के तापमान को नियन्त्रित करने वाली विधि को नुकसान पहुँचाती हैं।
2. एक्रोमाइसिन	सायनामिड	अनुपयोगी, जिनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
3. टेट्रामाइसिन	फाइजर	अत्यन्त घातक, यदि मरीज को ये दवायें देते रहने के बाद अचानक बन्द कर दी जायें तो गुर्दे खराब होते हैं तथा ब्लड प्रेशर गिर जाता है।
4. डेकाबोलिन	इन्फार	
5. हिस्टाप्रेड	वेथ	
6. पेरोकोर्ट	थेमिस केमिकल्स	
7. पेरोड्रान	मेरमिड	

1988 में प्रतिबंधित दवायें

भारत सरकार द्वारा 15 जून 1988 को विशेष गजट नोटीफिकेशन एक्स 11018/1/88 डी. एम. एस. पी. एफ. ए. जारी किया गया जिसके तहत ईस्ट्रोजन–प्रोजेस्ट्रोन, क्लोरम्फेनिकोल–स्ट्रेप्टोमाइसीन, स्टीरॉयड्स मूल दवाओं का व्यापार प्रतिबंधित किया गया। लेकिन विभिन्न ब्रांड नामों से बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ आज भी इन दवाओं का व्यापार कर रही हैं।

1. ई. पी. फोर्ट	**यूनीकेम**	**अत्यन्त घातक**
2. मेस्ट्रोजन फोर्ट	इन्फार	गर्भवती महिलाओं द्वारा प्रयोग करने पर अपंग बच्चे पैदा होने का खतरा। सामान्य स्थिति में लेने पर महिलाओं के मासिक धर्म में गड़बड़ी पैदा कर देती है।
3. ओरसेक्रोन फोर्ट	निकोलस	
4. ओगल्यूटिन	इन्फार	

1990–91 में प्रतिबन्धित दवाएं

सरकार ने 26 दिसम्बर 1990 तथा 11 फरवरी 1991 को जारी आदेशों द्वारा क्रमशः पाँच और दस प्रकार की जेनरिक दवाइयाँ प्रतिबन्धित की थी लेकिन इन जेनरिक दवाओं के प्रचलित ब्रांड नामों को प्रतिबन्धित सूची में न डालने की वजह से आज भी ये दवाइयाँ बाजार

में खुलेरूप से बिक रही हैं। इन दवाइयों में प्रमुख रूप से दर्दनाशक, कफ सीरप और टॉनिक आदि हैं, इनकी सूची नीचे दी जा रही है।

1.	**ब्यूटा प्राक्जीवान**	**बोकार्ड लिमिटेड**	**ये दवाइयाँ पहले 1983 में**
	स्पाज्मो प्राक्जीवान	बोकार्ड लिमिटेड	प्रतिबन्धित की जा चुकी हैं।
	प्राक्जीवान	बोकार्ड लिमिटेड	इनका अधिक इस्तेमाल दर्द
	कार्ब्यूटाइल	रसल्स इंडिया लि.	निवारक के रूप में होता है।
	वालाजेसिक	कार्टर वालेस	लेकिन ये अंतड़ियों में घाव भी
	वेगानिन	ईस्ट इंडिया लि.	करती हैं और प्रतिरोधक क्षमता
	फोर्टजेसिक	विनथ्रोप इंडिया लि.	नष्ट करती हैं।
2.	मान्टोरिप	प्लेथको फार्मा.	प्रतिरोधक क्षमता नष्ट करती है।
3.	डिकेरिस	एथनार इंडिया लि.	एक प्रकार का जहर जो पेट के
	जेटमिसोल–पी	एथनार इंडिया लि.	कीड़े मारने में इस्तेमाल होता है।
4.	जेफारल	मे एण्ड बेकर	ये सभी कफ सीरप हैं। डॉक्टरों के
	ल्यूपीहिस्ट	ल्यूपिन इंडिया लि.	मुताबिक कफ सीरफ गैर जरूरी है
	टिक्सीलिक्स	मे एण्ड बेकर	और किसी भी तरह के कफ
	कोरेक्स	फाइजर इंडिया लि.	से लड़ने में सक्षम नहीं है।
5.	ट्यूब्साइन	ग्रीफाइन इंडिया लि.खांसी	में इस्तेमाल की जाने
	ड्रीस्टन	ज्योर्फी मैनर्स	वाली गोलियाँ जो तंत्रिका तंत्र
			को प्रभावित करती हैं।

संदर्भ

1. जनसत्ता, सितम्बर, 1989।

2. न्यूयार्क टाइम्स, 31.3.1976, ड्रग इंडस्ट्री एण्ड द इंडियन पीपुल के पृष्ठ संख्या 224 से उद्धृत।
3. यू. एस. सेक्यूरिटी एण्ड एक्सचेंज कमीशन, उपरोक्त पुस्तक के उक्त पृष्ठ से उद्धृत।
4. उपरोक्त पुस्तक के पृष्ठ संख्या 225 से उद्धृत।

किसी भी देश में दवा की जरूरत स्थानीय जलवायु, सामाजिक व्यवस्था एवं आर्थिक क्षमता से निर्धारित होती है। विदेशी संस्थान (बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ) धनी देशों के सामाजिक और आर्थिक परिवेश को मद्देनजर रखकर नीतियों का निर्धारण करते हैं। मुक्त–बाजार व्यवस्था में व्यापार करना उनकी नीति है, भारत में उन्होंने यही पद्धति अपनायी है। इसीलिए यह पद्धति हमारे राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से हानिकारक है।

हाथी कमेटी की रिपोर्ट, पृष्ठ – 95

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से मुक्त दवा–उद्योग की जरूरत

हमारे देश में एक से अधिक चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलन में हैं। सर्वप्रथम इस देश की मिट्टी और आबो–हवा से पैदा और यहाँ की परम्परागत सोच और सांस्कृतिक पहचान से जुड़ी हुई आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति है। इसी से मिलती जुलती यूनानी पद्धति है। अंग्रेजी, फ्रांसीसी एवं पुर्तगालियों के सम्पर्क की बदौलत एलोपैथी एवं होम्योपैथी आयी। दो सौ सालों के औपनिवेशिक शासन और आजादी के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के शिकंजे ने हमारी अस्मिता को तोड़ा और वैज्ञानिक धरोहर को रौंदा। नतीजा यह कि एलोपैथी के मुकाबले भारतीय पद्धतियाँ पिछड़ते–पिछड़ते गुलामी की हालत में रह गयी हैं। सरकार ने आजाद भारत में सर्वप्रथम एलोपैथी पद्धति की शिक्षा एवं चिकित्सालयों के नियमन के लिये 1956 में भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद (इण्डियन मेडिकल काउंसिल) का गठन संसद से पारित एक अधिनियम के तहत किया। आधुनिक पद्धति में ही अनुसंधान हेतु आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (मेडिकल रिसर्च काउंसिल) पहले से ही गठित थी। कुछ अर्से बाद भारतीय एवं होम्योपैथी अनुसंधान की केन्द्रीय परिषद (सी. सी. आर. आई. एम. एच.) का गठन किया गया। लोकतान्त्रिक दबावों के चलते 1970 में केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद (सी. सी. आई. एच.) का गठन किया गया। इसके बाद भारतीय चिकित्सा एवं होम्योपैथी में अनुसंधान के लिये 1977 में आयुर्वेद एवं सिद्ध, यूनानी, होम्योपैथी, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों हेतु अलग–अलग केन्द्रीय अनुसंधान परिषदों का गठन किया गया। इस प्रकार वर्तमान में केन्द्रीय स्तर पर विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की शिक्षा एवं चिकित्साभ्यास हेतु तीन परिषदें एवं अनुसंधान हेतु 6 परिषदें कार्य कर रही हैं। इसके

अलावा सी. एस. आई. आर. के साथ–साथ आई. सी. एल. आर. भी कभी–कभी ऐसे कार्यक्रमों के साथ आगे आती है जो चिकित्सा एवं स्वास्थ्य से जुड़े हैं। देश में आधुनिक, भारतीय एवं होम्योपैथी के लगभग 104, 120 (आयुर्वेदिक–98, यूनानी–20 एवं सिद्ध–2) एवं 94 कालेज चल रहे हैं।

इतने बड़े तामझाम के रहते और विशेषकर 1970 के भारतीय पेटेन्ट कानून के बन जाने के बाद पूरे स्वदेशी चिकित्सा उद्योग तन्त्र ने काफी प्रगति की और एक प्रकार से हम इस मामले में आत्मनिर्भर ही हो गये। हाँ इस मामले में एक गम्भीर खामी जरूर रही एलोपैथी पर अन्य पद्धतियों के मुकाबले ज्यादा ध्यान दिया गया और स्वास्थ्य बजट का 90 प्रतिशत हिस्सा इसके विकास, शोध और उत्पादन पर खर्च किया गया। हालांकि एलोपैथी केवल 20 प्रतिशत जनसंख्या की ही स्वास्थ्य जरूरतों को पूरा करती है। जबकि देशी चिकित्सा पद्धतियाँ जो लोक स्वास्थ्य परंपराओं में व्यापक रूप से फैली हैं, अस्सी फीसदी से ज्यादा आबादी की रोजमर्रा की स्वास्थ्य जरूरतें पूरा कर रही हैं। भारत के विभिन्न प्रांतो में अलग–अलग नामों से प्रचलित स्थानीय या लोक चिकित्सा कर्मी देशी चिकित्सा पद्धतियों का उपयोग कर रहे हैं। हजारों वर्षों से जंगली जड़ी–बूटियों को दवाई के रूप में हम प्रयोग करते आ रहे हैं।

अब पेटेन्ट का हमला

आजादी के बाद हमारे स्वदेशी उद्योगों ने पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति एलोपैथी में भी अभूतपूर्व प्रगति की है। कई दुर्लभ एलोपैथिक दवाइयाँ सर्वसुलभ हैं तथा अन्य देशों के मुकाबले सस्ती भी हैं। हजारों शोधकर्ता और वैज्ञानिक नयी दवाइयों की खोज में प्रयासरत हैं। देश के बड़े शोध संस्थानों ने अपनी जरूरतों के मुताबिक दवाइयाँ विकसित की हैं। यहाँ तक कि आज हम कुछ दवाइयाँ तो दूसरे देशों को सस्ती दरों पर निर्यात भी कर रहे हैं।

परन्तु गैट में शामिल होने से अब दोनों प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों पर नया खतरा आ गया है। यूँ तो पहले से ही बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियाँ राष्ट्रीय जन स्वास्थ्य समस्याओं को अनदेखा कर अकूत मुनाफा कमाती रही हैं। देश में प्रतिबन्धित, प्रतिबन्ध योग्य, हानिकारक और गैर जरूरी दवाओं को बेचकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ 3000 करोड़ रूपये का सालाना से अधिक का मुनाफा कमाती रही हैं और साथ ही दवा बाजार पर एकाधिकार प्राप्ति का कुत्सित षडयन्त्र रचती जा रही हैं।

डंकल प्रस्तावों में जन स्वास्थ्य अपेक्षाओं की सर्वथा उपेक्षा की गयी है। इनके द्वारा बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ विश्व भर की मंडियों को हथियाने का प्रयास कर रही हैं। जिसका दुनिया भर की गरीब जनता पर प्रभाव पड़ने वाला है। रोगियों को औषधियाँ अब और मंहगी मिलेंगी। उपभोक्ता को अपनी सामाजिक और आर्थिक प्राथमिकताओं को बदलना पड़ेगा। इस भूमिका के परिप्रेक्ष्य में इलाज पर खर्चा और दवाइयों की कीमतों में तेजी से वृद्धि होगी।

नये पेटेन्ट कानूनों के अन्तर्गत प्रत्येक तकनीक और उत्पाद को पेटेन्ट व्यवस्था के अन्तर्गत लाना होगा। औषधियों पर वस्तु (Product) तथा बनाने की विधि (Process) पर पेटेन्ट लागू करने की व्यवस्था की गयी है। यह व्यवस्था 20 वर्ष वस्तु पर और 20 वर्ष वस्तु को बनाने की विधि पर लागू हो सकेगी। इस प्रकार लम्बे समय तक औषधियों को पेटेन्ट प्रणाली के अन्तर्गत लाया जा सकेगा। इस प्रकार की व्यवस्था होने के कारण भारत में 70

प्रतिशत से ऊपर दवाइयों पर पेटेन्ट प्रणाली की व्यवस्था होने की सम्भावना है। नई तथा पुरानी सब दवाइयाँ इससे प्रभावित होंगी। पुरानी दवाइयों के बनाने की नई विधियों के पेटेन्ट लिये जायेंगे।

अब यदि नये पेटेन्ट कानून बन जाते हैं तो बची खुची दवाइयाँ भी पेटेन्ट प्रणाली की हद में आ जायेंगी। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के नाम ही ज्यादातर पेटेन्ट होंगे और ये अधिकार औषधियों को देश में बनाने (Domestic Production) तथा बाहर से आयात (Import) करने पर समान रूप से लागू होंगे, इस कारण से बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपनी पेटेन्ट की हुई दवाइयों को विदेश से ही आयात करेंगी। इसका सीधा प्रभाव औषधियों की उपलब्धि तथा उनकी कीमतों पर पड़ेगा। 'भारतीय दवा उत्पादक संघ' के मुताबिक औषधियों की कीमतें दस गुना तक बढ़ जायेंगी। आयात अधिक हो जायेगा, स्थानीय उत्पादन हतोत्साहित होगा और मूल्य नियन्त्रण अप्रभावी हो जायेगा।

नई गैट प्रणाली के अन्तर्गत भारत की पेटेन्ट व्यवस्था भी अमेरिका जैसे देश की भांति बन जायेगी तथा एकाधिकार स्थापित होने के कारण दवाइयों की कीमतें कई गुना बढ़ जायेंगी और अधिकांश जनता इन दवाइयों को पाने से वंचित रह जायेगी। यही नहीं बल्कि बढ़ी हुई कीमतों के कारण सरकारी बजट में बढ़ोत्तरी न होने की सम्भावना से अस्पतालों, डिस्पैंसरियों तथा स्वास्थ्य केन्द्रों पर दवाइयों की उपलब्धि में भारी कमी आयेगी और स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी योजनाएं बुरी तरह प्रभावित होंगी।

दूसरी तरफ देशी चिकित्सा पद्धतियों पर जो कुठाराघात होने जा रहा है उसकी तरफ से सभी की आँखे बन्द हैं। पहले से ही उपेक्षित आयुर्वेदिक, यूनानी और सिद्धि पद्धतियों पर अब नयी पेटेन्ट प्रणाली के तहत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का जबरदस्त हमला होने वाला है। इसके एक कारण तो यह है कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति (एलोपैथी) पश्चिम के देशों की स्वास्थ्य समस्याओं को पूर्णरूपेण हल करने में अक्षम साबित हुई है और वहाँ के शोधकर्ताओं और उत्पादकों की निगाहें पूर्व की परम्परागत पद्धतियों पर लगी हुई हैं। इन पद्धतियों में इस्तेमाल होने वाली वनस्पतियाँ, जड़ी–बूटियाँ पश्चिम के देशों में नहीं पायी जाती। पश्चिमी कम्पनियाँ कितनी महत्वपूर्ण दवाइयाँ पौधों और जड़ी–बूटियों से बनाती है यह निम्न तालिका से देखा जा सकता है –

दुनिया भर में जड़ी–बूटियों से प्राप्त की जाने वाली प्रमुख दवाएं

जड़ी बूटी	दवा	उपयोग
एमेजोनियन लियाना	क्यूटेट	पेशी के खिंचाव में
ओटम क्रोकस	कोलकिसीन	ट्यूमर विरोधी
बेलाडोना	एट्रोपाइन	एण्टी एलर्जी
कैम्फर पौधा	कैम्फर	रूबीफेसियेन्ट
कोका	कोकेन	लोकल एनस्थीसिया
कामन थाइम	थाइमोल	फफूंद रोधी
फाक्स ग्लो	डिजिटोक्सीन	हृदय टॉनिक

इण्डियन स्नेक रूट	रेजरपाइन	तनाव रोधी
मिडी स्वीट	सेली साइक्लीक एसिड	दर्द नाशक
मेक्सीकन याम	डायोसजेनिन	गर्भ निरोधक
मिंट	मेंथोल	रूबीफेसियेंट
नौक्सवोमिका	स्ट्राइकनीन	एन. सी. एस. उत्प्रेरक
ओपियम	मारफीन	दर्द निवारक
थार्न एप्पल	स्कोपोलेमीन	शान्ति प्रदान करने
रोजी पेरी व्रिंकल	विन क्रिस्टीन	ल्यूकेमिया रोधी
वालवेट बीन	एल – डोपा	पार्किंसन रोग रोधी
व्हाइट विलो	सैलीसीन	दर्द निवारक
थैलो सिनकोना	कूनैन	मलेरिया रोधी

भारत जैसे तीसरी दुनियाँ के देशों में ही इनका भंडार है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की तमाम शोध एजन्सियाँ पहले से ही इन देशों में कार्य कर रही हैं और चोरी छिपे हजारों वनस्पति प्रजातियाँ अपनी प्रयोगशालाओं में ले जा चुकी हैं और अब यदि नई पेटेन्ट प्रणाली के तहत ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ उन लाखों देशी नुस्खों और जड़ी बूटियों के औषधीय गुणों को अपने नाम पेटेन्ट करा लेती हैं तो हमारा क्या होगा? यह प्रश्न अति गम्भीर है। देश में हजारों सालों से संचित ज्ञान और अनुभव की पूँजी को बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ लूट ले जायेंगी और फिर हमको ही मुंहमांगी कीमत पर उपलब्ध करायेंगी।

यह होने भी लगा है। मसलन हमारे देश में नीम सर्वसुलभ है और उसके औषधीय गुणों का प्रयोग हजारों वर्षों से हमारे यहाँ आयुर्वेद से लेकर घरेलू नुस्खों और कीटनाशकों के रूप में बड़े पैमाने पर हो रहा है। लेकिन इस नीम पर पेटेन्ट की मार पड़ गयी है और एक अमेरिकी कम्पनी डब्ल्यू. आर. ग्रेस एण्ड कम्पनी ने नीम के विभिन्न चमत्कारिक औषधीय गुणों को अपने नाम पेटेन्ट करा लिया है।

नीम : बेशकीमती

आजाडिरेक्टा इंडिका ए जुस्स – नीम का वैज्ञानिक नाम जिसके कीटनाशी रसायनिक पदार्थ पर अब अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी डब्ल्यू. आर. ग्रेस पेटेन्ट ले चुकी है। ब्रिटिश और अमेरिकी वैज्ञानिकों का ध्यान नीम की ओर 1970 में गया। तब से ही अमेरिका का कृषि विभाग, निजी उद्योगों की सहायता से इस बात की खोज कर रहा है कि नीम का वाणिज्यिक उपयोग कैसे किया जाये।

भारतीय गाँवों में नीम की पत्तियों का उपयोग गरम कपड़ों और अनाज को कीटों से बचाने के लिये किया जाता है। गर्भाधान विशेषज्ञों का मत है कि गुप्तांगों में नीम का तेल इस्तेमाल करने से गर्भाधान रोका जा सकता है। नीम के पत्तों का रस पीने से स्त्री एक सप्ताह तक बँध्या हो जाती है। चर्म रोगों में तो नीम का घोल अचूक असर करता है।

चिकित्सा जगत में नीम की अनन्त सम्भावनाएं हैं। अभी हाल ही में चण्डीगढ़ के स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान की चिकित्सक प्रो. कृष्णा यादव ने घावों में संक्रमण रोकने के लिये नीम के घोल से तैयार अचूक एंटीसैप्टिक दवा इजाद की, जो अन्य दवाओं के मुकाबले बहुत सस्ती है। प्रो. कृष्णा यादव का कहना है कि महत्वपूर्ण चिकित्सा संस्थानों में भारतीय चिकित्सा पद्धति पर शोध को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

अब भविष्य में हम नीम के गुणों पर लाख दावेदारी करते रहें, उन गुणों पर पेटेन्टधारी की दावेदारी ही मान्य होगी। तुलसी का पेड़ हमारे यहाँ घर–घर उगाया जाता है और उसका उपयोग बहुत सारे रोगों में किया जाता है परन्तु अब एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी तुलसी के औषधीय गुण को पेटेन्ट कराने का प्रार्थना पत्र दे चुकी है। इसबगोल नामक वनस्पति की भी यह कहानी है जिसका करोड़ों का व्यापार बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ ही करती हैं। इन जैसी हजारों अन्य वनस्पतियों के औषधीय गुणों की हमारे देश के तथाकथित अनपढ़ गंवार लोगों में विलक्षण पहचान क्षमता है। जल्दी ही उन्हें भी पेटेन्ट के डाकू ले उड़ेंगे, तो हमारी क्या हालत होगी?

एक अद्‍भुत वनस्पति की उपेक्षा

स्मृति को बढ़ाने वाली वनस्पति के रूप में ब्रह्मी की बहुत प्रतिष्ठा है आयुर्वेद ग्रंथों में इसके गुणों का बहुत वर्णन मिलता है। अभी हाल ही में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में इससे याददाश्त वापस लाने वाली दवा बना ली गयी है। इस भारतीय उपलब्धि का विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों जाने का खतरा पैदा हो गया है। क्योंकि भारतीय अधिकारी इसे पेटेन्ट कराने में दिलचस्पी नहीं ले रहे। दूसरी तरफ अमेरिका में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हैल्थ 'ब्रह्मी' दवा बनाने में जुट गया है। बी. एच. यू. के शोध कर्ता प्रो. जी. पी. दूबे को डर है कि अमेरिका हमसे पहले इसे पेटेन्ट करा लेगा।

ब्रह्मी न सिर्फ स्मरण शक्ति बढ़ाने में सहायक होती है, बल्कि अनिद्रा के कारण होने वाले तनाव को भी कम करती है। बी. एच. यू. में हुए शोध से पता चलता है कि पढ़ने–लिखने में कमजोर स्कूली बच्चों के लिये भी यह दवा कारगर है। इससे पागलपन तक ठीक हो सकता है। ब्रह्मी मिरगी के दौरे रोकने में भी कामयाब हुई है।

भारत ही नहीं एशिया अफ्रीका के तमाम मुल्कों की सम्पन्न प्राकृतिक सम्पदा को उपनिवेशीकरण के ये नये पहरूये ले जायेंगे। बायो तकनीक के माध्यम से नयी प्रजातियों और बीजों का विकास कर ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हमें ही महंगे दामों पर बेचेंगी जबकि उनका जर्मप्लाज्म हमारे यहाँ से ही इन्होंने प्राप्त किया है। उदाहरण के लिये, अफ्रीका के जंगलों में पाये जाने वाले एक फल में थोमेटिन नाम का दुनिया का सबसे मीठा (चीनी से 1 लाख गुना ज्यादा) पदार्थ अमेरिका की जैनटैक नामक कम्पनी ने अपने नाम पेटेन्ट करा लिया है और अब मधुमेह के रोगियों को चीनी के विकल्प के तौर पर थोमेटिन बेचकर ये कम्पनियाँ मुनाफा कमायेंगी।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से मुक्त दवा–उद्योग की जरूरत

आज जब बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की मानव विरोधी गतिविधियों का पर्दाफाश हो चुका है तो ऐसे समय दवा उद्योग के क्षेत्र में इस तरह की वैकल्पिक व्यवस्था को सामने रखना जरूरी हो जाता है जो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से बिल्कुल मुक्त हो। इस तरह की व्यवस्था केवल

इसलिए ही आवश्यक नहीं है कि इससे देश दवा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की तरफ बढ़ेगा बल्कि इसलिए भी कि करोड़ों गरीब मरीजों को सस्ता उपचार उपलब्ध कराकर ' जीवन रक्षा' जैसे उदात्त नैतिक मूल्यों की स्थापना भी हो सकेगी। 1974 में गठित हाथी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट (1975) में कहा था, "मुनाफे के आदर्श में विश्वास रखने वाले बहुराष्ट्रीय संस्थानों (बहुराष्ट्रीय कम्पनियों) के हमारे देश में रहने से हमारे दवा–उद्योग पर सिर्फ व्यवसायिक स्वार्थ का प्रभाव बढ़ेगा। ये सारी दुनिया में मनुष्य के दुख को पूँजी बनाने का संगठित प्रयास कर रहे हैं। उनके इस प्रयास को छिन्न–भिन्न करने के लिए भारत में उनकी उपस्थिति यथाशीघ्र समाप्त करनी होगी।" रिपोर्ट में आगे बड़े जोरदार ढंग से कहा गया "इसलिए हम लोग पूरी ताकत के साथ सिफारिश करते हैं कि दवा एवं वनस्पति उद्योगों के क्षेत्रो में बहुराष्ट्रीय यूनिटों का सरकार आधिग्रहण करे और उनके संचालन का भार प्रस्तावित 'राष्ट्रीय दवा प्राधिकरण' को सौंपा जाय।"

इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि राष्ट्रीयकरण के सिवाय मुनाफाखोर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से निपटने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है क्योंकि इनके रहते जीवन रक्षा के उद्‌देश्य को लेकर काम करने वाले खासकर सार्वजनिक दवा प्रतिष्ठान बंद होने की स्थिति में पहुँच गये हैं। आई. डी. पी. एल. एक ऐसा ही उदाहरण है। इसके साथ ही साथ भारतीय दवा उद्योग को जीवंत बनाने के लिये सरकार की तरफ से आवश्यक आर्थिक, नैतिक एवं प्रशासनिक सुविधाएँ उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

गरीब जनता को सस्ता उपचार मुहैया करने के लिए जरूरी है कि सरकार दवाओं का मूल्य–निर्धारण करे एवं दवाओं को उनके मूल रासायनिक नामों पर ही बनाने की छूट दे न कि प्रचलित नाम पर ताकि दामों पर मनमानीपन की सम्भावना न रहे।

दवाइयों का मौलिक उपादान देश में ही बने, बाहर से किसी भी कीमत पर आयात न किया जाय ताकि दवाओं का लागत मूल्य कम और स्थिर रह सके।

इस संदर्भ में एक बात जो बहुत आवश्यक है वह यह है कि हजारों वर्ष से आजमाई हुई उन स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों को पुनर्जीवित एवं विकसित किया जाय जो बहुराष्ट्रीय निगमों की हमलावर नीतियों के चलते आज उपेक्षा की शिकार हैं। आयुर्वेदिक, यूनानी–तिब्बी (हकीमी), आदिवासी चिकित्सा पद्धतियाँ सम्भवत : यहाँ के परिवेश में अधिक प्रभावी और सस्ता उपचार दे पाने में सक्षम होंगी न कि विदेशी परिवेश में पनपी पश्चिमी चिकित्सा पद्धति। वैसे इन सबके बीच यदि अच्दा समन्वय बनाया जा सके तो बेहतर होगा। लेकिन दुर्भाग्य से हमारे देश की सरकारों ने आज तक स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों के साथ सौतेला व्यवहार किया है। आज हर व्यक्ति 'एलोपैथिक संस्कृति' में पलता है, क्योंकि शिक्षा के पाठ्यक्रमों में उसे आयुर्वेदिक जीवन–शैली का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। इसलिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से मुक्ति पाने के लिए आवश्यक है कि अपने ज्ञान और अपनी मनीषा से मानव पीड़ाओं पर विजय पाने हेतु रास्ता ढूँढ निकाला जाय।

कीटनाशकों का भी निशाना है हमारा स्वास्थ्य

कीटनाशक दवाइयों के छिड़काव वाले गेहूं के आटे की तली हुई पूरियाँ खाने वाले उत्तर प्रदेश के बरेली जिले के करीब डेढ़ सौ व्यक्तियों के मौत के शिकार बनने की घटना अभी जेहन में बरकरार है। हालत यह है कि इस तरह के छोटे–बड़े समाचार आये दिन सुर्खियों में पढ़ने को मिल जाते हैं। इन समाचारों से विचारक एक बार फिर चिंतित होने लगे हैं। संकर बीज के आगमन के बाद कीटनाशकों के उपयोग में तेजी से वृद्धि होने के कारण आज कुल खेती योग्य जमीन के चौथे भाग में इस जहर का इस्तेमाल शुरू हो गया है। उसमें आधे से अधिक भाग तो डी. डी. टी., बी. एच. सी. और मैलाथियोन का ही है। पचास के दशक में इन दवाइयों का वार्षिक उपयोग सिर्फ दो हजार टन था, जो आज बढ़ कर अस्सी हजार टन तक पहुंच चुका है। फिर भी ताज्जुब तो यह है कि जीव–जन्तु, रोग आदि से फसल को जो नुकसान (संग्रह के समय के नुकसान सहित) होता था, उसका आँकड़ा, जो सन् 1976 में 3300 करोड़ टन था, वह आज बढ़कर छः हजार करोड़ टन हो गया है। सन् 1960–61 में 64 लाख हेक्टेअर में यह जहर (वास्तव में इसे दवा कैसे कहा जाय। दवा जीवन रक्षा करती है उसका हनन नहीं) डाला जाता था, अब उसके स्थान पर आठ करोड़ हेक्टेअर में डालने का यह नतीजा है। ओटावा स्थिति इंटरनेशनल डेवेलपमेंट रिसर्च सेंटर का दावा है कि तथाकथित विकसित देशों में ही कीटनाशकोंके जहर से हर वर्ष दस हजार आदमी मर जाते हैं और दूसरे चार लाख आदमी तरह–तरह के विपरीत परिणामों से पीड़ित होते हैं। ऐसे जहरों को हम क्या कहेंगे – कीटनाशक या मानव भक्षक? इनके मुख्य शिकार खेत मजदूर होते हैं। पाश्चात्य देशों में जिन पर पाबंदी लगाई गई है, वैसे रसायन तीसरे विश्व में उड़ेले जाने के कारण यह परिस्थिति पैदा हुई है। महाराष्ट्र तथा आंध्रप्रदेश में रूई (कपास) उगाने वाली पट्टी में इन कीटनाशकों के कारण खेत मजदूरों में अन्धत्व, कैन्सर, अंगविकृतियां, लीवर के रोग तथा ज्ञानतन्तुओं के रोग होने के उदाहरण पाये गये हैं।

अल्युमिनियम फॉस्फाइड जो अनाज संग्रह के लिए सर्वाधिक प्रभावशाली माना जाता है, मनुष्य के भोजन में जाने से जहरीला असर करता है। आल इंडिया इन्सटीट्यूट आफ मेडिकल साइंसेज के डाक्टरों के एक दल ने सन् 1988 में एक सर्वेक्षण किया था, उसमें अल्युमिनियम फॉस्फाइड के ही जहरीले असर के 114 उदाहरण रोहतक (हरियाणा) में, 55 उत्तर प्रदेश में, और 30 हिमांचल प्रदेश में पाये गये थे।

एरण्डी के तेल से लेकर राख मिलाने तक की और गोर मिट्टी की कोठियों में घर–घर अनाज सुरक्षित रखने की जो सुंदर विकेन्द्रित व्यवस्था थी, उसे खत्म कर दिया गया। एस. टी. सी. के अरबों रूपयों की लागत से बने गोदामों में अनाज के साथ जहर मिला कर करोड़ों के व्यवस्था खर्च से अनाज संग्रह करने की व्यवस्था (फिर भी लाखों टन अनाज सड़ जाता है) को ही क्या हम प्रगति और विकास कहेंगे?

फालीडोल नामक कीटनाशक के छिड़काव वाली चीनी और गेंहू के आटे के उपयोग से केरल में 106 लोगों की मृत्यु हो गयी बतायी जाती है। डी. डी. टी., बी. एच. सी., एल्ड्रान, क्लोसडेन, एड्रीन, मिथाइल पैराथियोन, टोक्साफेन और हेप्टाक्लोर तथा लिण्डेन आदि अनेक कीटनाशक जिन्हें विश्व स्वास्थ्य संस्था (डब्ल्यू. एच. ओ.) ने अत्यन्त विषैला और असुरक्षामय

करार दिया है और जिनके इस्तेमाल पर कई देशों में या तो सम्पूर्ण रोक है या सख्त नियंत्रण है, हमारे देश में खुलेआम उपयोग क्यों होता है? इसका स्पष्टिकरण संसद सदस्यों तथा जनसाधारण को देश तथा राज्यों के कृषि विभाग से माँगना चाहिए। यद्यपि सामने से स्पष्टीकरण मिलने की संभावना बहुत ही कम है, क्योंकि बेचारे मंत्रियों को तो अपने सचिवों का पढ़ाया पाठ ही रट लेना होता है।

एक औसत भारतीय को अपने दैनिक आहार में 0.27 मिलीग्राम डी. डी. टी. भी पेट में डालना पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप औसत भारतीय के शरीर के ऊतकों में एकत्रित हुए डी. डी. टी. का स्तर 12.8 से 31 पी. पी. एम. यानि विश्व में सबसे ऊँचा है। दिल्ली वालों के शरीर की चरबी में भी कीटनाशकों का स्तर विश्व में सबसे ऊँचा कहा जाता है। गेहूं में 1.6 से 17.4 पी. पी. एम., चावल में 0.8 से 16.4 पी. पी. एम., दालों में 2.9 से 16.9 पी. पी. एम., मूंगफली में 3.0 से 19.1 पी. पी. एम. साग सब्जी में 5.00 और आलू में 68.5 पी. पी. एम. तक डी. डी. टी. पाया गया है। अनाज, दालें, अंडे, मांस और साग–सब्जी के जिन नमूनों की जाँच की गई थी उनमें से आधे नमूनों में कीटनाशकों के अंश देखने को मिले और एक तिहाई नमूनों में तो ये अंश डब्ल्यू. एच. ओ. द्वारा सुझाई गई सहयमात्रा से भी अधिक थी। महाराष्ट्र में डेयरी द्वारा बोतलों में बिकने वाले दूध के 90 प्रतिशत नमूनों में 4.8 से 6.3 पी. पी. एम. तक डी. डी. टी., 1.9 से 6.3 पी. पी. एम. तक डिल्ड्रीन भी पाया गया। जबकि दोनों की सहयमात्रा सिर्फ 0. 66 पी. पी. एम. ही है। डी. डी. टी. और बी. एच. सी. का औसत परिमाण क्रमश : 3.6 और 2. 6 पी. पी. एम. मक्खन में देखा गया है जबकि सह्यमात्रा केवल 1.25 पी. पी. एम है।

ऐसे जहर के लगातार इस्तेमाल के कारण भूगर्भ का जल, नदी, नाले, तालाब आदि दूषित हो गये हैं। कर्नाटक के हासन जिले के तालाबों के पीने के पानी में तो 0.02 से लेकर 0.2 पी. पी. एम. तक कीटनाशक पाये गये, जबकि कावेरी के पानी में 1000 पी. पी. बी. (पार्ट्स पर बिलियन), बी. एच. सी. और 1300 पी. पी. बी. पेरोथियोन देखा गया।

सस्ता साहित्य संस्था द्वारा प्रकाशित आर्यभिषक् नामक 100 वर्ष पूर्व लिखे गये वनस्पति औषध विषय के एक ग्रंथ में ऐसा उल्लेख है कि अनाज में हरे (जो सूख न गये हों) मींढल (डोडे) के फल डाल रखे हों तो अनाज पारा डाले हुए अनाज से भी ज्यादा अच्छी तरह सुरक्षित रहता है। बात–बात में पीढ़ी–दर–पीढ़ी मिलने वाले अनुभव ज्ञान की ऐसी कितनी विरासत स्कूल–कालेजों में शिक्षा प्राप्त महिलाओं ने सुरक्षित रखी होंगी?

अधिक से अधिक फसल उगाने के पागलपन में हमने संकर बीज और बनावटी खाद की गलत राह अपनायी, जिससे फसल की रोग प्रतिरोधक शक्ति घट गयी और कीटनाशकों को प्रवेश मिला। अनाज की उपज बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि कीटनाशकों को दाखिल करने के लिए संकर बीज का इस्तेमाल बढ़ाया जा रहा है, यह बात लोगों के ध्यान में ही नही आयी। साल में दो–दो, तीन–तीन फसलें पाने की उपलब्धि की डींग हांकते समय यह बिल्कुल भुला दिया गया कि पकी फसल लेने पर किसान जब वह फसल काट लेता तो उसके बाद खेत खाली रहता। इस दौरान उस खेत में हानिकारक जीव–जंतुओं को पनपने के लिए कोई आहार न मिलने के कारण उनकी जातियों पर कुदरती ढंग से अंकुश आ जाता था।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा कीटनाशकों का व्यापार :–

कीटनाशकों के उत्पादन और उनके प्रयोग को प्रचारित करने में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को महारत हासिल है। अरबों डालर का सालाना व्यापार करके करोड़ों लोगों के जीवन में जहर घोल रही हैं। हरित क्रान्ति और व्यापारिक कृषि के नाम पर विकासशील देश कीटनाशकों के कुजाल में फंस चुके हैं। नीचे की तालिका में कीटनाशक उत्पादन करने वाली मुख्य बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के नाम दिये जा रहे हैं :—

कीटनाशक बनाने वाली मुख्य बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

कम्पनी	मुख्य गतिविधि	कीटनाशक	व्यापार शोध और विकास पर खर्च (करोड़ डालर में)(करोड़ डालर में)
सीबा—गायगी	दवाइयाँ	203.7	16.7
बेयर	रसायन	172.7	14.0
आई. सी. आई.	रसायन	147.7	15.0
रोन — पोलेंक	रसायन	146.4	10.0
मानसेंटो	रसायन	117.8	9.4
ड्यू पाँ	पेट्रोलियम	110.0	11.0
बी. ए. एस. एफ.	रसायन	88.9	अनुपलब्ध
हेक्सट	रसायन	83.3	8.0
डो	रसायन	82.0	7.0
शैल	पेट्रोलियम	75.4	7.5
शेरिंग	दवाइयाँ	66.0	8.0
ए. साइनामिड	रसायन	61.5	8.6
सेंडोज	दवाइयाँ	55.0	5.5
एफ. एम. सी.	रसायन/हथियार	47.8	6.7
इली लिली	दवाइयाँ	40.8	4.0

स्रोत — गैट एण्ड इण्डिया : पालिटिक्स आफ एग्रीकल्चर — ले. देवेन्द्र शर्मा

क्योंकि कीटनाशक निर्माता बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कारोबार अरबों डालर सालाना का है अत : इस उद्योग के निहित स्वार्थ बहुत ताकतवर हो गये हैं। ज्यादातर कीटनाशक उत्पादक कम्पनियाँ साथ ही साथ अन्य प्रकार के कृषि रसायनों और नई प्रजातियों के बीजों का भी उत्पादन करती हैं। रसायन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने बड़े—बड़े फसल अनुसंधान संस्थानों और बीज विपणन प्रतिष्ठानों को खरीद लिया है। देखने सुनने में तो अच्छा लगता है कि अब बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ नई—नई जैवतकनीकों द्वारा उच्च उत्पादन क्षमता और कीटरोधी गुणसम्पन्न बीजों का उत्पादन और विपणन करेंगी। परन्तु खतरनाक है कीटनाशी उत्पादन करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा बीज उत्पादन और व्यापार को अपने हाथों नियन्त्रित करने के पीछे

का निहित स्वार्थः ऐसे बीजों का उत्पादन जिनमें ज्यादा रासायनिक खादों और ज्यादा कीटनाशकों का उपयोग हो सके। जिस रफ्तार से कृषि बीजों की जैव विविधता (व्यवसायिक खेती के चलते) नष्ट हो रही है, वह दिन दूर नहीं जब सारा का सारा बीज व्यापार कम्पनियों के हाथ में होगा और किसान पूरी तरह इन नये बीजों पर ही निर्भर हो जायेंगे। साथ ही साथ, कीटनाशकों के भारी इस्तेमाल के लिये भी मजबूर हो जायेंगे।

सभी एग्रोकेमिकल बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपने शोध का अधिकांश हिस्सा खरपतवार नाशकों के प्रति सहनशील बीज विकसित करने में लगा रखा है, यानि ऐसे बीज जिनके साथ ज्यादा से ज्यादा खरपतवार नाशक रसायन इस्तेमाल किये जा सकें, परन्तु इन रसायनों का असर फसलों पर न हो। चावल, मक्का, गेहूँ, आलू, सोरगम, सोयाबीन, सब्जी और अन्य व्यापारिक फसलें जैसे एल्फा–एल्फा, केनोला, काटन, पापलर, गन्ना, सूरजमुखी, तम्बाकू, टमाटर और खाद्यतेल आदि फसलों के बीजों में खरपतवार नाशी रसायनों के प्रति सहनशीलता विकसित करने के प्रयास ये कम्पनियाँ कर रही हैं। यह दावा भी किया जा रहा है कि इन नये बीजों के इस्तेमाल करने से खरपतवार नाशी रसायनों की खपत कम होगी। इस प्रकार की फसलें 'पर्यावरण–दोस्त' रसायनों के इस्तेमाल को बढ़ावा देंगी। ऐसे नये खरपतवार नाशी रसायनों के विकास का दावा किया जा रहा है जो कम से कम दुष्प्रभाव रखते हैं और मिट्टी में मिलने के बाद अहानिकारक रसायनो में तब्दील हो जाते हैं। परन्तु रेबेका गोल्डवर्ग और साथियों द्वारा लिखित पुस्तक 'बायोटेक्नोलोजीज बिटर हारवेस्ट : हर्बिसाइड टोलरेन्ट क्राप्स एण्ड द थ्रेट टू सस्टेनेबल एग्रीकल्चर' में इस बात को चुनौती दी है कि वास्तव में खरपतवारनाशी रसायनों के प्रति सहनशीलता रखने वाले बीजों के इस्तेमाल से 'पर्यावरण–दोस्त' रसायनों का इस्तेमाल बढ़ेगा? रेबेका गोल्डवर्ग कहते हैं कि खरपतवारनाशी सहनशीलता पुराने, ज्यादा जहरीले जैसे मैट्रीब्यूजीन, एट्राजीन, ट्राइयाजीन, मैटोलाक्लोर और 2, 4 डी आदि रसायनो के प्रति ही प्रयोग की जा रही है, और नये और पुराने खरपतवार नाशकों का बाजार बढ़ाने के लिये प्रोत्साहन भी दिये जा रहे हैं। इसे देखते हुये यह असम्भव ही है नये कम खतरनाक खरपतवार नाशी रसायन पुराने ज्यादा खतरनाक रसायनो का स्थान ले लेंगे। गोल्डबर्ग ने चेतावनी दी है कि खरपतवार नाशी सहनशील फसलें और वृक्ष के उत्पादन में नई किस्म के खरपतवार नाशी रसायनों का ज्यादा इस्तेमाल होगा और अन्ततः कृषि की इन रसायनो पर निर्भरता बनी रहेगी।

यूरोपीयन पार्लियामेंट के खाद्य, मत्स्य और कृषि आयोग की एक रिपोर्ट (1986) में ठीक ही कहा गया है ' उद्योगों के दृष्टिकोण से, खरपतवार नाशी सहनशील प्रजातियों का विकास आर्थिक दृष्टिकोण से लाभप्रद है क्योंकि इन प्रजातियों के विकास के मुकाबले नये खरपतवार नाशी रसायनों के विकास में 20 गुना अधिक धन लगता है।' और यही तर्क बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का है। जिनमें से अधिकतर इस मैदान में कूद चुकी हैं। कीटनाशक विकास, पौध प्रजनन और बीज उत्पादन तीनो को सम्मिलित रूप से एक ही कम्पनी द्वारा करने के कारण, अब कम्पनियाँ कृषि लागतों का एक सम्पूर्ण पैकेज ही बेच सकेंगी। ये बीज, उसी कम्पनी द्वारा उत्पादित कीट और खरपतवार नाशी के प्रति सहनशील होंगे, और इस तरह दोनों (बीज, और कीट व खरपतवार नाशी) की बिक्री साथ–साथ होगी, साथ–साथ बढ़ेगी।

27 से ज्यादा बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इस प्रकार के शोध में लगी हुई हैं। नीचे की तालिका में कुछ बीज उत्पादक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के नाम दिये जा रहे हैं।

बीज उत्पादन में लगी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

कम्पनी	देश	मुख्य गतिविधि	बीज व्यापार (करोड़ डालर में)
पायोनियर	यू. एस. ए.	बीज	69.2
सेंडोज	स्विट्जरलैण्ड	रसायन	38.2
लीमाग्रेन	फ्रांस	बीज	23.4
कारगिल	यू. एस. ए.	खाद्य प्रसंस्करण	25.0
अपजोन	यू. एस. ए.	रसायन	21.7
प्रोवेंडर	स्विट्जरलैण्ड	खाद्य प्रसंस्करण	21.3
सीबा–गायगी	स्विट्जरलैण्ड	रसायन	21.3
फाइजर	यू. एस. ए.	बीज	15.4
शैल	ब्रिटेन/न्यूजीलैण्ड	पेट्रोलियम	20.0
ओरसन	फ्रांस	जैव रसायन	13.9
के. डब्ल्यू. एस.	जर्मनी	बीज	12.7
आई. सी. आई.	ब्रिटेन	रसायन	9.8
ल्यूब्रीजोल	यू. एस. ए.	रसायन	8.3

स्रोत – पियरे, वैनियट जोली, आई. एन. ए. –सी. एन. आर. एस. –फ्रांस

सीबा गायगी कम्पनी ने नये किस्म का सोयाबीन का बीज तैयार किया जो सीबा गायगी द्वारा ही उत्पादित खरपतवार नाशी एट्राजीन के प्रति सहनशीलता रखता है। इस बीज की वजह से सीबा गायगी के एट्राजीन की सालाना बिक्री 12 करोड़ डालर बढ़ गयी। हमारे लिये इस प्रकार की खेती वास्तव में चिन्ताजनक है, क्योंकि नये बीजों के इस्तेमाल करते हुये हमारे किसान मजबूर हो जायेंगे कि वे खरपतवार नाशी व कीटनाशी रसायन भी खरीदें और प्रयोग करें। हमारे यहाँ अभी कुल कृषि के 15–20 प्रतिशत हिस्से में ही इन जहरीले और खतरनाक रसायनों का प्रयोग होता है परन्तु अब यह निश्चित रूप से बढ़ जायेगा।

विकसित देश चालाक हैं –

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने ज्यादातर कीटनाशको और खरपतवार नाशको के लिये विकासशील देशों में बाजार खोजती हैं। ऐसे रसायन भी खुलेआम बेचे जाते हैं जो विकसित देशों में प्रतिबन्धित हैं। इनके उपयोग को हरित क्रान्ति, ज्यादा उत्पादन, व्यवसायिक उत्पादन के नाम पर बढ़ावा दिया जाता है। निश्चित् रूप से, ऐसी फसलों में खतरनाक रसायनों का

बहुत बड़ा अंश रहता है जो इनके इस्तेमाल से पशुओं और मनुष्यों में पहुंचता है तथा उनके जीवन को खतरे में डाल देता है। इस प्रकार के कृषि उत्पाद विकसित देशों को निर्यात न किये जा सकें इसके लिये गैट समझौते में अलग से एक अध्याय 'सैनीटरी और फाइटो सैनीटरी मेजर्स' को जोड़ा गया है।

'सैनीटरी और फाइटो सैनीटरी मेजर्स' का मुख्य निशाना वे विकासशील देश ही हैं, जहां से कृषि उत्पाद विकसित देशों को निर्यात किये जाते हैं। गैट समझौते के इस प्रावधान में यह तय किया गया है कि सभी देशों को वे सुरक्षा नियमन और निर्देशन मानने होंगे जो खाद्य रसायनों, वेटेनरी दवाओं, कीटनाशकों, मिलावटों, विश्लेषण के तरीकों और हाइजीन प्रेक्टिस के नियमों के लिये कोडेक्स ऐलीमेंटेरियस आयोग (Codex Alimentarius Comission) द्वारा तय किये गये हैं। रोम स्थित यह आयोग संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ. ए. ओ.) द्वारा संचालित तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू. एच. ओ.) द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त है। इस आयोग का उद्देश्य पशुओं, सब्जियों और फलों की गुणवत्ता के लिये बने नियम कानूनों में एकरूपता स्थापित करना है। इसके लिये अन्य अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं, इण्टरनेशनल आफिस आफ इपिजूटिक्स तथा इण्टरनेशनल प्लांट प्रोटेक्शन कन्वेशन आदि का भी सहयोग मिलता है। कोडेक्स एलीमेंटेरियस द्वारा खाद्य स्तर बनाये रखने के लिये की गयी संस्तुतियाँ बहुत ही चालाकी से विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों से होने वाले खाद्य सामग्री (कृषि उत्पादों) के आयातों को यह कह कर रोकने में इस्तेमाल की जाती है कि विकासशील देशों द्वारा उत्पादित खाद्य वस्तुओं के इस्तेमाल से विकसित देशों के लोगों को स्वास्थ्य का खतरा है।

ये संस्तुतियाँ ही गैट समझौते में सैनीटरी एवं फाइटो सैनीटरी मेजर्स के प्रावधानों में शामिल की गयी हैं। हालांकि इन संस्तुतियों को बनाते समय और उन पर एक अन्तरराष्ट्रीय समझौता करते समय खाद्य विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों एवं डाक्टरों द्वारा उनकी समीक्षा की जानी चाहिये थी, परन्तु खाद्य एवं रसायन बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अधिकारियों ने ही सब कुछ अपने आप तय कर दिया। इसमें उपभोक्ता समूहों के सुझाव भी नहीं लिये गये। परिणाम सामने है। कोडेक्स संस्तुतियाँ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पक्ष मे जाती हैं। अब जब विकासशील देश भी खतरनाक कीटनाशकों और रसायनों द्वारा स्वास्थ्य और पर्यावरणीय खतरों के प्रति सचेत हो रहे हैं, तब कोडेक्स की संस्तुतियों में कीटनाशकों के अंश (Residues) के सीमा में छूट दे दी गयी है।

कोडेक्स एलीमेंटेरियस में अमेरिकी प्रतिनिधि मण्डल का गठन इस बात का सबूत देता है कि इस संस्था में आखिर क्या पक रहा है। इस प्रतिनिधि मण्डल में नेस्ले, हालैण्ड एण्ड नाइट, कोकाकोला, पेप्सी कोला, हर्षे फूड कार्पोरेशन जैसी बड़ी खाद्य और कीटनाशक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रतिनिधि रहे हैं। कोडेक्स का अध्यक्ष भी यूनाइटेड स्टेट्स डेवलपमेंट एजेंसी (यू. एस. डी. ए.) का वरिष्ठ अधिकारी ही था। अमेरिकी कांग्रेस का मत है कि खतरनाक कीटनाशकों के निर्यात को, जिनका उपयोग अमेरिका में प्रतिबन्धित है एक कानून बनाकर रोक दिया जाय क्योंकि, ये कीटनाशक (अन्य देशों में) उन फसलों पर छिड़के जाते हैं, जिनका आयात फिर अमेरिका को ही होता है। उदाहरण के लिये अमेरिका में 1972 में डी. डी. टी. का उपयोग प्रतिबन्धित कर दिया गया और भारत में भी सिर्फ मलेरिया निवारण में इसके इस्तेमाल की अनुमति है। परन्तु कोडेक्स की संस्तुतियाँ इस कीटनाशी के प्रयोग को उचित ठहराती हैं। एक

तरफ तो विकासशील देशों में प्रतिबन्धित रसायनों का प्रयोग (कोडेक्स संस्तुतियों के मुताबिक) चलता रहेगा, परन्तु दूसरी तरफ सैनीटरी एवं फाइटो सैनीटरी मेजर्स के चलते इन कीटनाशकों का उपयोग जिन कृषि उत्पादों पर किया जायेगा वे कृषि उत्पाद विकसित देशों को निर्यात नहीं किये जा सकेंगे।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की वास्तविकता

एक बहुत बड़ी तेल कम्पनी का कहना है कि वह 'ग्लोबल वार्मिंग' के प्रति सावधानी का रवैया अपना रही है। एक बड़ा कृषि रसायन निर्माता एक ऐसे खतरनाक कीटनाशक का व्यापार करता है जो कई देशों में प्रतिबन्धित है, परन्तु वह कम्पनी जतलाती है कि वह भूखों को खाना देने में मदद कर रही है। ड्यू पाँ के अधिकारी अब भी यह नहीं मानते कि उनका लैड गैसोलीन एडिटिव हानिकारक है। शैल अभी भी कीटनाशकों से जहर फैलाने की घटनाओं की जिम्मेदारी नकारती है। रोन पौलेंक और कुछ अन्य कम्पनियाँ अपने देशों में प्रतिबन्धित कीटनाशकों के निर्यात का समर्थन करती हैं। यूनियन कार्बाइड जो भोपाल का कीटनाशक कारखाना चलाती थी उसने दुनिया की सबसे बड़ी औद्योगिक दुर्घटना से हुई हजारों मौतों की जिम्मेदारी लेने से इन्कार कर दिया। ऐसे ही डो केमिकल व शैल कम्पनी ने सालों तक कानूनी दांव पेंच में उस केस को उलझाए रखा जिसमें उन पर डी. बी. पी. सी. नाम के कीटनाशक के निर्माण व इस्तेमाल का आरोप था। इस कीटनाशक के प्रभाव से कोस्टारिका के खेत मजदूरों में बन्धयता पैदा हो गयी थी। कुछ कम्पनियों के कारनामें नीचे दिये हैं –

ड्यू पाँ –

यू. एस. ए. की सबसे बड़ी रसायन कम्पनी जिसका 40 देशों में कारोबार है तथा रसायन, पेट्रोलियम, फाइबर्स, पालीमर्स, कोयला, कीटनाशक का कारोबार करती है। डयू पाँ विश्व में क्लोरो फ्लोरो कार्बन (सी. एफ. सी.) की आविष्कारक व सबसे बड़ी निर्माता कम्पनी है। यह रसायन वातावरण की ओजोन लेयर में क्षय का मुख्य कारण है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अनुसार ओजोन क्षय के चालू स्तर की वजह से कम से कम 3 लाख त्वचा कैंसर के केस होंगे। इससे मैलिग्रैंट मैलेनोमा भी होगा और वर्ष भर में मोतिया बिन्द के करीब 1.5 करोड़ केस और बढ़ जायेंगे। मनुष्यों की प्रतिरोधक क्षमता में कमी, फसलों को नुकसान और फाइटो प्लेंकटन की संख्या में कमी हो सकती है जो समुद्री जीवों के भोजन का मुख्य आधार तैयार करते हैं। ड्यू पाँ ने सी. एफ. सी. के एवज में बनाये गये रसायन का उत्पादन और बिक्री शुरू कर दी है। हाइड्रो क्लोरो फ्लोरो कार्बन (एच. सी. एफ. सी.) व हाइड्रो फ्लोरो कार्बन (एच. एफ. सी.) को यह कम्पनी सुरक्षित विकल्प के रूप में पेश कर रही है। पर वास्तविकता यह है कि यह गैसें भी विश्व के पर्यावरण के लिये खतरनाक हैं। ओजोन परत को कम करते हैं, ग्रीन हाउस प्रभाव बढ़ाते हैं।

ड्यू पाँ टेट्राइथाइल लैड गैसोलीन एडिटिव की आविष्कारक तथा आखिरी बचे हुए उत्पादकों में से है। यह उत्पादन, यू. एस. ए., कनाडा, जापान व आस्ट्रेलिया में पूरा प्रतिबन्धित किया जा चुका है, क्योंकि पर्यावरण में लैड का जहर फैलाने में इसकी भूमिका स्पष्ट है। मस्तिष्क को नुकसान और पर्यावरण में लैड के जहर के बीच सीधा सम्बन्ध है– खास तौर पर बच्चों में। खून में थोड़ी सी लैड से भी बुद्धि में कमी, सीखने में रूकावटें, याददाश्त में कमी व व्यवहार में परेशानी की स्थिति हो सकती है।

विश्व भर में अनुमान है कि ड्यू पाँ और उसके सहायक रोज 1.6 करोड़ पाउंड प्रदूषक छोड़ते हैं। सिर्फ 1986 में ड्यू पाँ और उसके सहायकों ने 34.8 करोड़ पाउंड जहरीले रसायन अमेरिका की वायु, मिट्टी और पानी में डाले। 1991 मार्च में माटामोरोस, मैक्सिको में ड्यू पाँ का क्विमिका फ्लोर प्लांट के आस पास का क्षेत्र इतना जहरीला हो गया था कि मैक्सिको के राष्ट्रपति ने जगह के आसपास 2 मील का बफर जोन बनाने के लिये 30,000 लोगों को अपने घर छोड़ने का आदेश दिया।

शैल ग्रुप –

इंग्लैण्ड की शैल ग्रुप की बहुराष्ट्रीय कम्पनी का मुख्य धंधा पेट्रोलियम पदार्थों का है। 1990 में शैल ग्रुप ने दुनिया की सब कम्पनियों के मुकाबले सबसे ज्यादा मुनाफा कमाया। इसका कारोबार 100 देशों में फैला है। 50 देशों में 40 करोड़ एकड़ जमीन है। इसमें 1,37,000 लोग काम करते हैं। वार्षिक बिक्री 100 अरब डालर से ऊपर है।

आज तक के सबसे महत्वपूर्ण खतरनाक रसायन निर्यात मामले में शैल ने स्टैण्डर्ड फ्रूट कम्पनी को केले के बागानों के लिये एक ऐसा कीटनाशक रसायन सप्लाई किया जिसमें डाई ब्रोमो क्लोरो प्रोपेन (डी. बी. सी. पी.) था। शैल कम्पनी को 1950 से ही मालूम था कि प्रयोगशाला के नर जन्तुओं में इससे बन्ध्यता (स्टरलिटी) होती है। पर उसने अपने लेबलों पर यह जानकारी नहीं दी। संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम ने जब तय किया कि डी. बी. सी. पी. से मनुष्यों में भी बन्ध्यता होती है और उत्पादन पर निषेध लगा दिया, तब भी शैल ने यह रसायन बेचना बन्द नहीं किया। डी. बी. सी. पी. के साथ काम करने के बाद कोस्टारिका के केले के बागानों में काम करने वाले हजारों लोगों में बन्ध्यता पैदा हो गयी तो शैल के वैज्ञानिक ने डी. बी. सी. पी. केस के ऊपर बात करते हुए कहा "खैर जो भी है, जहाँ तक मैने सुना है कि वहाँ जरा बच्चों को पैदा करने पर रोक लगेगी तो इस देश के लिये अच्छा ही होगा।"

शैल विश्व में दसवीं सबसे बड़ी कीटनाशक निर्माता कम्पनी है और एल्ड्रिन, डाइएल्ड्रिन, व एल्ड्रिन की आविष्कारक व अकेली उत्पादक है। यह खतरनाक कीटनाशक उन दर्जन भर खतरनाक पदार्थों में से है जो 35 देशों में प्रतिबन्धित है।

साल्वे व सी. आई .ई. –

बेल्जियम की इस कम्पनी का कारोबार 24 देशों में है और विश्व की चौथी बड़ी क्लोरीन व पाली वाइनिल क्लोराइड की निर्माता है। साल्वे के अध्यक्ष डेनियल जानसन 'यूरोपियन फेडरेशन फार कैमिकल इण्डस्ट्रीज' के भी अध्यक्ष हैं जिसकी उपसमिति 'यूरों क्लोर फैडरेशन' आधुनिक समाज में क्लोरीन के फायदों को बढ़ावा देने का काम करती है। क्लोरीन कई आधुनिक पर्यावरण व स्वास्थ्य समस्याओं की जड़ है। ओजोन विनाशक सी. एफ. सी., डी. डी. टी., व पी. सी. पी. जैसे कीटनाशक, पी. सी. वी. से निषिद्ध औद्योगिक रसायन, भूमि जल प्रदूषक जैसे क्लोरिनेटेड साल्वेन्ट, डाइआक्सीन व फ्यूरान जैसे सह उत्पादन और हजारों अन्य खतरनाक रसायन अपनी कायम रहने की विशेषता के लिये क्लोरीन का इस्तेमाल करते हैं।

हाइड्रोकार्बन के साथ मिश्रण से क्लोरीन, आर्गेनोक्लोरीन नाम के रसायन बनाती है। आर्गेनोक्लोरीन प्रवृत्ति से जहरीले, टिके रहने वाले व जैव तन्त्र में इकट्ठे होने वाले होते

हैं। मनुष्यों में वो प्रजनन में असफलता, जन्मजात खराबियाँ, पेट में बच्चों के शैशव विकास में रूकावटें, कैंसर व तन्त्रिकाओं को नुकसान पहुँचाते हैं।

रोने पोलेंक –

फ्रांस की सबसे बड़ी रसायन कम्पनी, विश्व में आठवीं सबसे बड़ी, 80 देशों में कार्यरत, रोने पोलेंक को 1990 में 'फ्रेंच सेंटर फार फारेन ट्रेड' द्वारा वर्ष का सर्वश्रेष्ठ निर्यातक घोषित किया गया। सेन्टर ने यह नहीं जोड़ा कि इनमें से अधिकांश निर्यात जान लेवा रसायनों के थे। रोने पोलेंक विश्व के आज बेचे जाने वाले सबसे जहरीले कीटनाशक एल्डिकार्ब की एक मात्र उत्पादक है। एल्डीकार्ब की एक बूंद से वयस्क व्यक्ति मर सकता है। कम मात्रा में जाने से नसों की तकलीफें,सांस की रोक, मितली, पेट में तेज दर्द, दस्त व सर दर्द हो सकते हैं। 1986 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ने अनुमान लगाया कि दसियों हजार शिशु व बच्चे प्रतिदिन केलों व आलुओं में एल्डीकार्ब अवशेषों की चपेट में आ रहे हैं और उसने प्रस्तावित किया कि एल्डीकार्ब के छिड़काव की मनाही कर दी जाय। एल्डीकार्ब 11 देशों में प्रतिबन्धित है परन्तु कम्पनी अभी भी 70 देशों में इसे बेच रही है।

एल्डीकार्ब बनाने की प्रक्रिया के एक भाग में मीथाइल आइसो साइनेट इस्तेमाल होती है – वह गैस जिसने भोपाल में हजारों को मारा।

सेन्डोज लिमिटेड –

स्विटजरलैण्ड की यह बहुराष्ट्रीय कम्पनी औषधी, रसायन, कृषि रसायन, बीज, पोषण का काम 54 देशों में करती है। सेंडोज वह कम्पनी है जो इतिहास में सबसे बुरे नदी में जहरीले रसायन के बिखराव की जिम्मेदार है। 1986 में वासेल, स्विटजरलैण्ड में एक रसायन विखराव से रहाइन नदी में प्रदूषण व जहर हो गया जिससे सैकड़ों मीलों तक मछली, वन–जीवन व पेड़–पौधे मर गये। रहाइन नदी से बिखराव में बहुत खतरनाक आर्गेनो फास्फेट डिसुल्फोटोन व पाराथियोन के तीस टन नदी में बह गये। तब सेंडोज ने सफाई के तौर पर अपना आर्गेनो फास्फेट उत्पादन का 60 टक्का हिस्सा रेसेन्डे, ब्राजील पहुँचा दिया।

कितनी बड़ी हैं ये? बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की विनाश में भूमिका

बड़ी दुर्घटनायें – बहुराष्ट्रीय कार्पोरेशनों की कार्रवाइयाँ आम तौर पर वर्करों तथा जन समूहों को कई तरह के स्वास्थ्य व सुरक्षा के जोखिम में डालती हैं। बहुत दफा यह कार्रवाइयाँ दुर्घटनाओं में बदल जाती हैं। कई बड़ी दुर्घटनायें कार्पोरेशन के अपने देश के बाहर होती हैं और कुछ में पर्यावरण, स्वास्थ्य व सुरक्षा नियमों और उनके पालन में दोहरे मापदण्ड इस्तेमाल हुए हैं। इनके सबसे बुरे उदाहरण हैं :–

सेबेसो, इटली – स्विस हॉफमैन ला रोश की एक सहायक कम्पनी ने ट्राइक्लोरोफिनोल का प्लान्ट लगाया जिसके लिये उन्हें स्विटजरलैण्ड में पर्मिट नहीं मिल सका। 1976 में वहाँ एक विस्फोट में 156 वर्कर तथा 37,000 नागरिक डायऑक्सिन के बादल से प्रभावित हुए।

भोपाल, भारत – अमेरिकी यूनियन कार्बाइड की सहायक कम्पनी में 1984 में एक बड़ी दुर्घटना में 3,500 लोग मारे गये, 20,2000 लोग घायल हुए और अनजानी संख्या के बच्चों में स्थाई पैदाइशी कमियाँ आई।

बेसल, स्विटजरलैण्ड – 1986 में डिसुलफोटोन और अन्य रसायनों के एक बड़े बिखराव में सैकड़ों मील तक मछली, वन जन्तु और पेड़–पौधे मर गये। स्विस कम्पनी सैन्डोज जो अधिकांश बिखराव की जिम्मेदार थी – ने अपने डिसुलफोटोन का गोदाम रेसेन्डे ब्राजील पहुंचा दिया।

फासिल ईंधन – बहुराष्ट्रीय कम्पनी की कार्रवाइयाँ औद्योगिक खण्डों से निकलती आधे से अधिक ग्रीनहाउस गैसों की जिम्मेदार हैं जिनका ग्लोबल वॉर्मिंग पर बहुत असर है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ कुल तेल निकालने और परिष्कृत करने का 50 प्रतिशत नियंत्रित करती हैं। गैस व कोयले के निकालने, परिष्कृत करने तथा बेचने में भी उनका इतना ही हाथ है।

सी. एफ. सी. – बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पास ओजोन विनाशक क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सी. एफ. सी.) के उत्पादन व इस्तेमाल का लगभग पूरा नियंत्रण है।

खदान का काम – खनिज तेल निकालने में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अभी भी प्रमुख उद्योगों पर प्रभुत्व है। अल्यूमिनियम में सिर्फ 6 कम्पनियाँ कुल खदान क्षमता का 63 प्रतिशत, परिष्कृत करने की क्षमता का 66 प्रतिशत तथा पिघलाने की क्षमता का 54 प्रतिशत नियंत्रण में लिये हैं।

कृषि – जोती जाने वाली भूमि में से 80 प्रतिशत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों में है जिस पर निर्यात के लिये फसलें उगाई जाती हैं। अक्सर यह स्थानीय खाद्यान्नों को हटा कर किया गया है। बीस बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ 90 प्रतिशत कीटनाशक की बिक्री की जिम्मेदार हैं और दुनिया में ज्यादातर जननिक बीज कोषों का नियंत्रण इनके हाथ में है।

जहरीले रसायन – बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ दुनिया की ज्यादातर क्लोरीन का उत्पादन करती हैं– यह आज तक ज्ञात कुछ बहुत ही जहरीले, टिकने वाले और जैव जगत में इकट्ठे होने वाले कृत्रिम रसायनों का आधार है। इन में पी. सी. बी., डी. डी. टी., डायऑक्सिन व फ्यूरान, क्लोरिनेटिड सॉल्वेन्ट तथा हजारों अन्य आर्गेनोक्लोरीन मिश्रण शामिल हैं। इन रसायनों के स्वास्थ्य के ऊपर निम्न असर हैं – इम्यून सप्रेशन, पैदाइशी कमियाँ, जननिक विकास, व तंत्रिका सम्बन्धी खराबियाँ, जिगर व अन्य अंगों को नुकसान, कैन्सर व अन्य बीमारियाँ।

खतरनाक वस्तुओं में व्यापार – एक समूह के रूप में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ उन चीजों व प्रोद्योगिकियों के आयात व निर्यात में अगुआ हैं जो कि कुछ देशों में स्वास्थ्य व सुरक्षा की वजहों से निषिद्ध हैं। कुछ उदाहरण : 1980 के दशक के अंत में अमेरिका से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कुल कीटनाशक निर्यात का 25 प्रतिशत ऐसे रसायनों का था जो स्वयं अमेरिका में निषिद्ध, रजिस्ट्रेशन रद्द किये हुए या वापस लिये हुए थे। अमरीका व यू. के. में आधारित बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ लैड गैसोलीन एडिटिव का लगभग पूरा विश्व बाजार नियंत्रित करे हुए हैं– यह उत्पादन अमेरिका, कैनाडा, जापान, आस्ट्रेलिया से लगभग पूरी तरह हटाया जा चुका है और पश्चिमी यूरोप में हटाया जा रहा है क्योंकि पर्यावरण में लैड के प्रदूषण व बचपन में लैड के जहर फैलाने के लिये उसका योगदान भली भाँति पहचाना जा चुका है।

वित्त – बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की गतिविधियाँ विश्व भर की उत्पादक सम्पत्ति का एक चौथाई हिस्सा इस्तेमाल करती हैं। विश्व व्यापार के उत्पादों का 70 प्रतिशत, अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय आदान–प्रदान का बड़ा भाग और विश्व की उच्चतम प्रोद्योगिकी का एक बड़ा हिस्सा उनके हाथ है।